Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# यज्ञ-विमर्श

## एक वैज्ञानिक अध्ययन

डॉ. रामप्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
15·3
राम-य
129451

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

# यज्ञ-विमर्श

## एक वैज्ञानिक अध्ययन

पुस्तकालय
129451
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

R15.3,RAM-Y
129451

**प्रोफेसर डॉ. रामप्रकाश**

एम.एससी. (ऑनर्ज़), पीएच.डी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक: डॉ. रामप्रकाश
एम.एससी. ( ऑनर्ज़ ), पीएच.डी.
प्रोफेसर (सेवा-निवृत्त), पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़
पूर्व प्रो-वाइस चांसलर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
1634, सैक्टर 13, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
दूरभाष : 01744-221571

R
15.3
राम-य

© लेखकाधीन

प्रथम संस्करण (हवन यज्ञ और विज्ञान) : जून 1963
द्वितीय संस्करण (यज्ञ-विमर्श) : 1997 (1000 प्रतियाँ)
पुनरावृत्ति : 2001 (5000 प्रतियाँ)
तृतीय संस्करण : 1 जून, 2005 (3100 प्रतियाँ)

दयानन्दाब्द : 182
आर्य संवत्सर 1,96,08,53,106

आवरण सज्जा : सिद्धार्थ प्रताप सिंह
आवरण चित्र : अमतोझ सन्धू द्वारा निर्देशित व शैलेन्द्र द्वारा छायांकित वृत्तचित्र से
शब्द संयोजन : धर्मसिंह

प्रकाशक : डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार, सत्यार्थ प्रकाशन न्यास,
1425/13, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)
दूरभाष : 01744-225571

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणा स्रोत

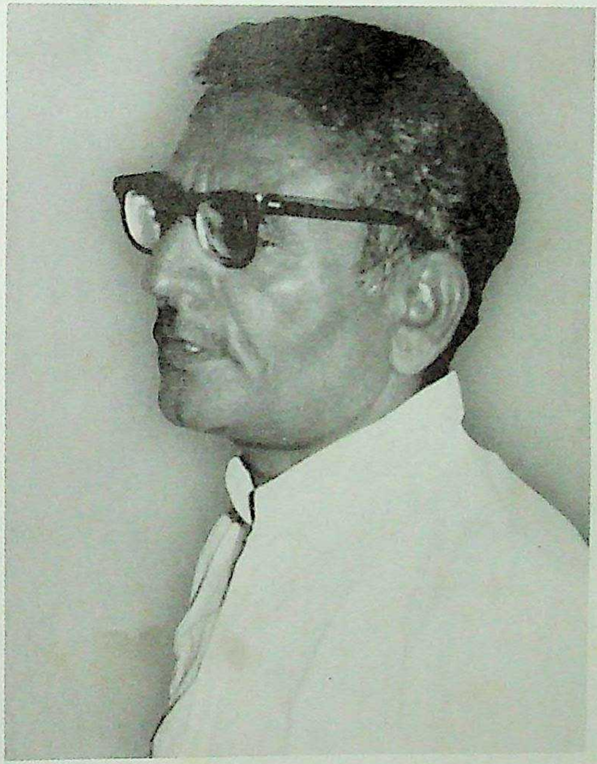

भाई बीरुराम जी आर्य
(15.03.1936-09.12.1995)

प्रिय भाई श्रीं बीरुराम जी आर्य को
जिनकी सुखद छाया हमसे छिन गई।

-रामप्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे पिता*
और उनका बड़ा भाई** शहर आए हैं
दो भाई शहर आए हैं

अपने कपड़ों से पहचाने जाते हैं
कि वे अलग हैं
अपनी चाल से
बोली के भार से पहचाने जाते हैं कि वे अलग हैं
अपने चेहरे के रंग से – कि वे अलग हैं
जैसे वे हँसते हैं खुलकर, पहचाने जाते हैं
अपनी आवाज के भारी रेशे की मिठास से
पहचाने जाते हैं

उनकी चाल में है भारीपन, वे साथ लाए हैं
उनकी हँसी में हैं, बातें, वे साथ लाए हैं
वे साथ लाए हैं याद अपने पिता की
जिसके माथे पर
पगड़ी थी। माथे पर धूप, हाथ में हुनर

जितेन्द्र रामप्रकाश
की कविता 'दो भाई' से

---

*डॉ. रामप्रकाश, ** श्री बीरुराम आर्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# अनुक्रम


| | | |
|---|---|---|
| क | : | प्रस्तावना |
| घ | : | आभार |
| 1 | : | इतिहास एवं परम्परा |
| 12 | : | भावना |
| 24 | : | प्रक्रिया |
| 27 | : | समिधा |
| 31 | : | सामग्री |
| 45 | : | दहन क्रिया |
| 59 | : | पर्यावरण एवं नैरोग्य |
| 74 | : | वृष्टि |
| 82 | : | परिशिष्ट 1: ऋत्वनुकूल यज्ञ सामग्री |
| 84 | : | 2: पारिभाषिक शब्दावली |
| 85 | : | 3: रासायनिक पदार्थ |
| 86 | : | परिशिष्ट 4: रासायनिक समीकरण |
| 89 | : | लेखक परिचय |


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वायुर्धेहि यज्ञथाय देव ऋ. 10.7.1

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां
चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳश्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां
पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्।
प्रजापतेः प्रजाऽअभूम स्वर्देवाऽअगन्मामृताऽअभूम ॥ यजु., 9, 21

देवान् यज्ञेन बोध्य अथर्व.19.63.1

नायं लोकोऽस्त्यज्ञस्य कुतोऽन्यः। गीता 4, 31

'हे अर्जुन! जो यज्ञ नहीं करते उनको यही लोक प्राप्त नहीं होता, तो परलोक क्या प्राप्त होगा।'

"होम करने से पवन और वर्षा-जल की शुद्धि करके शुद्ध पवन और जल के योग से पृथिवी के सब पदार्थों की जो अत्यन्त उत्तमता होती है, उससे सब जीवों को परमसुख होता है। इस कारण उस अग्निहोत्र करने वाले मनुष्यों को भी जीवों का उपकार करने से अत्यन्त सुख का लाभ होता है। तथा ईश्वर भी उन मनुष्यों पर प्रसन्न होता है। ऐसे ऐसे सभी प्रयोजनों के अर्थ अग्निहोत्रादि अत्यन्त उचित है।"

महर्षि दयानन्द सरस्वती
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पञ्चमहायज्ञविषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# प्रस्तावना

यज्ञ शब्द अति व्यापक है, पर यह अग्निहोत्र अथवा हवन (होम) के लिए रूढ़ हो गया है। जहाँ श्रद्धालु यज्ञ को मोक्ष की सीढ़ी मानते हैं, वहाँ अनास्थावादी इसे अर्थहीन अवैज्ञानिक कर्मकाण्डी क्रिया समझते हैं। यज्ञ का सही भाव न समझने से ही चार्वाक मत पनपा था, जिसकी प्रतिक्रिया जैन एवं बुद्धमत के रूप में हुई थी। तब स्वामी शंकराचार्य ने कोरे कर्मकाण्ड के विरुद्ध आवाज उठाई। पिछले कई सहस्र वर्षों में महर्षि दयानन्द सरस्वती पहले वेद भाष्यकार हैं जिन्होंने वेद मन्त्रों के आधार पर यज्ञ का अर्थ वायु तथा वर्षा जल की शुद्धि, शिल्प विद्या की सिद्धि एवं अभिवृद्धि, शिल्प कार्य, यन्त्र कला, विद्वानों और प्रौद्यौगिकी की उन्नति आदि लिया है। जहाँ सायणादि उनके पूर्ववर्ती भाष्यकारों ने विभिन्न वेदमन्त्रों को केवल आहुति परक यज्ञ प्रक्रिया तक सीमित कर दिया था, वहाँ ऋषिवर ने यज्ञ के आध्यात्मिक, आधिदैविक व आधियाज्ञिक अर्थ लिए हैं।

विभिन्न मतावलम्बियों ने यज्ञ पर कई पहुलओं से चिन्तन, मनन व अध्ययन किया है परन्तु इसके वैज्ञानिक विश्लेषण का लगभग अभाव है। प्रोफेसर (स्वामी) सत्यप्रकाश, डी.एससी. (इलाहाबाद) ने इस विषय पर अपना चिन्तन अंग्रेज़ी में प्रकाशित किया था पर हिन्दी में तो उतना भी कार्य नज़र नहीं आता। इस अभाव की पूर्ति के लिए मैंने एम. एससी. (ऑनर्ज़) करते ही अपने पूज्य भाई श्री बीरुराम जी आर्य के निर्देश पर जो कुछ लिखा था, वह 'हवन-यज्ञ और विज्ञान' शीर्षक से पुस्तिका रूप में जून 1963 ई. में प्रकाशित किया गया। तब भले ही उत्साह तो बहुत था, पर शोध प्रविधि का न विशेष ज्ञान था, न अनुभव। रासायनिक पदार्थों के लिए प्रयुक्त हिन्दी शब्दावली भी मानक नहीं थी। मुद्रण की अशुद्धियाँ तो अनेक थीं, फिर भी पाठकों द्वारा उस प्रयास का स्वागत किया गया। मेरे भाईजी की सतत प्रेरणा बनी रही कि मैं चिन्तन को परिमार्जित करूँ और पुस्तक को संशोधित। मैं धीरे-धीरे इस दिशा में गतिशील रहा, पर बहुमुखी व्यस्तताओं, समयाभाव, लिखने के प्रति सुस्ती, प्रकाशित करवाने की दुनियावी कला में अरुचि आदि मेरी कमियों ने तीस साल लगा दिए। समय के साथ मेरी इन कमियों पर भाईजी की इच्छा ही भारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


रही। परिणाम – जो बन पड़ा, वह आपके समक्ष है।

पुस्तक पढ़ने पर आपको सम्भवतः लगेगा कि विषय को एक अलग ढंग से समझने का प्रयास किया गया है, जैसे – यज्ञप्रेमी प्रायः ऐसा मानते हैं कि यज्ञ सर्वदा सर्वत्र प्रचलित रहा है, पर इसकी पुष्टि में प्रमाण देने की आवश्यकता कभी किसी ने नहीं समझी। 'इतिहास एवं परम्परा' अध्याय में इस दिशा में एक सामान्य-सी पहल की गई है। यह अपने आप में अनुसन्धान का एक स्वतन्त्र रोचक विषय है। पहल इस विश्वास के साथ की है कि न जाने कौन-सी चिंगारी किस दिन धधक उठे।

यज्ञ को एक रासायनिक क्रिया के अतिरिक्त जिस सामाजिक एवं आर्थिक विधान के रूप में मैं समझ पाया हूँ, दूसरे अध्याय में उसकी चर्चा है। आशा है आपको यह रोचक लगेगा। आध्यात्म में मेरे जैसे सामन्य व्यक्ति की न कोई गति है, न अनुभूति, अतः कोरे स्वाध्याय के आधार पर उधर दखल देने की अनाधिकार चेष्टा करने का साहस मैंने नहीं जुटाया।

तीसरे अध्याय में यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड, यज्ञपात्र एवं सामान्य विधि पर ऋषि दयानन्द सरस्वती के विचारों तक सीमित रहा हूँ। विस्तार में इसलिए नहीं गया कि मेरा उद्देश्य अग्निहोत्र में होने वाले सम्भावित रासायनिक परिवर्तनों को समझना था।

समिधाओं एवं हव्य सामग्री के औषध सम्बन्धी गुण, दोष तथा उनकी रासायनिक बनावट (अध्याय 4 व 5) इन पदार्थों के दहन पर उत्पन्न होने वाली गैसों की जानकारी दे सकती हैं, अतः वैदिक विचारधारा एवं विज्ञान के आधार पर जो समझ पाया हूँ, वह अध्याय 6 में लिखा है। विषय कठिन एवं अछूता है, अतः भूलों के लिए अग्रिम क्षमायाचक हूँ।

यज्ञों को पर्यावरण की शुद्धि का हेतु तो सभी मानते हैं (अध्याय 7) पर यज्ञ द्वारा वर्षा हो सकती है या नहीं – इस पर विपरीत धारणाएँ हैं। वर्षा की सम्भावना को नकारना न तो वैज्ञानिक है, न तर्कसंगत। हाँ, यह विषय अभी और खोज माँगता है।

विज्ञान के विद्यार्थियों की सुविधा के लिए पुस्तक में प्रयुक्त विशेष वैज्ञानिक शब्दों का अंग्रेज़ी रूपान्तर परिशिष्ट 2 में दिया है। विज्ञान न जानने वाले पाठकों को अध्याय 6 तथा 7 पढ़ने में कठिनाई न हो, अतः रासायनिक समीकरण साथ-साथ न देकर अलग से परिशिष्ट 4 में दिए हैं। पुस्तक में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यथासम्भव हिन्दी मानक शब्दावली प्रयोग की गई है। जहाँ कहीं वेदमन्त्र के अर्थ करने वाले मनीषी का नाम नहीं दिया, वे अर्थ भी यथासम्भव ऋषि दयानन्द सरस्वती के भाष्यों के अनुसार ही लिए गए हैं। अथर्ववेद के मन्त्रों के अर्थों के लिए पण्डित जयदेव विद्यालंकार तथा श्रीयुत दामोदर सातवलेकर रचित भाष्यों को आधार माना है।

पाण्डुलिपि में शास्त्रों से दिए गए प्रमाणों को मूल ग्रन्थों से मिलाने आदि का कार्य आचार्य सोम वेदालंकार व प्रिय राजेन्द्र विद्यालंकार ने बड़ी सावधानी से किया है— मैं उनकी गहन रुचि के लिए आभारी हूँ। महात्मा सत्यदेव आर्य वानप्रस्थी, वेदभवन, कुरुक्षेत्र का आशीर्वाद मेरे साथ रहा, पर यदि ब्रह्मचारी नन्दकिशोर जी इस पुस्तक के प्रकाशन की व्यवस्था न करते तो कदाचित् यह आपके हाथों में न होती। समय के साथ एकत्रित सामग्री भी नष्ट हो जाती। श्री आदित्यप्रकाश आर्य (अनीता आर्ष प्रकाशन, पानीपत) ने इसे सहर्ष प्रकाशित किया है। उनके सहयोग की सराहना कैसे करूँ? पुस्तक के सुन्दर मुद्रण का पूर्ण श्रेय स्वामी जगदीश्वरानन्द जी महाराज को है।

साथ ही एक पीड़ा भी लगातार परेशान कर रही है। मैं जीवन में जिस रूप में हूँ, उस सब में मेरे स्वर्गीय पिता श्री प्रभुदयाल जी व पिता तुल्य भाई श्री बीरुराम जी आर्य का सर्वाधिक योगदान है। मेरा भाई और मैं एक आत्मा के दो शरीर थे। चोट मुझे लगती थी, दर्द उन्हें होता था। क्रूर मौत ने 9 दिसम्बर, 1995 को उस पवित्रात्मा को हमसे छीन लिया। उनके बिना सब सूना है। जिस पुस्तक के प्रकाशन में उन्हें गहन रुचि थी, उसे प्रकाशित भी न देख पाए। उनके आशीर्वाद का फल उन्हीं की पुण्य-स्मृति में समर्पित है। उनके निधन पर प्रिय जितेन्द्र रामप्रकाश द्वारा अनायास लिखी लम्बी कविता 'दो भाई' उस पुण्यात्मा को मेरी अगली पीढ़ी की श्रद्धाञ्जलि है। उस कविता की कुछ पंक्तियाँ उनके चित्र के पृष्ठ भाग पर श्रद्धापूर्वक मुद्रित हैं।

इस पुस्तक के संशोधन में आपके सुझावों का स्वागत है।

रामप्रकाश (डॉ.)

ऋषि निर्वाणोत्सव
10 नवम्बर, 1997

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# आभार एवं आग्रह

अतीत में अपने पूर्ण अर्थों में 'यज्ञ' न केवल भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के आधारों का सम्प्रेषक प्रतिनिधि रहा है बल्कि वर्तमान में यह संस्कृति के भारतीय पक्ष का प्रमुख पहचान बिन्दु भी बना हुआ है। कितना अजीब है कि भारतीय समाज की सर्वोच्च उदात्त अवधारणाओं के साथ-साथ निकृष्टतम विद्रूप व्यवस्थाएँ भी यज्ञवेदी के दांए-बांए से ही पैदा हुईं हैं। इन असंयत कर्मकाण्डी विधि-विधानों से आहत ऋषि दयानन्द ने यज्ञ के निहितार्थों को जान समझकर इन विद्रूप जटिल प्रक्रियाओं को परिमार्जित, परिभाषित एवं पुनर्गठित किया। आज फिर जटिल प्रक्रियाएँ अपने नए श्रृंगार, लुभावने आश्वासनों, प्रस्तुति के सुरीले मोहक अन्दाजों एवं उच्चतम प्रबन्धन के साथ विशाल पण्डालों, भव्य आयोजनों एवं रुपहले पर्दे की मार्फत समाज में अवतरित हो रही हैं। कई साथी बड़ी कुटिल कुशलता के साथ ऋषि दयानन्द का कवच के तौर पर इस्तेमाल करते हुए 'यज्ञ' को 'उद्योग' बनाने के कारोबार में मशगूल हो गए है। ऐसे में ऋषि दयानन्द की कर्मकाण्ड दृष्टि पर व्यापक एवं ईमानदार परिचर्चा की आवश्यकता बेहद बढ़ जाती है। डॉ. रामप्रकाश जी की यह पुस्तक ऋषि दयानन्द के कर्मकाण्ड विषयक दार्शनिक, सामाजिक एवं वैज्ञानिक – बहुआयामी आधारों की पड़ताल का बेहतरीन तार्किक प्रतिवेदन है।

बहुविध विकृत विचारों, व्याख्याओं और तदाधारित परम्पराओं के विरुद्ध जनचेतना को प्रबोधित करने के लिए ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज पर आधारित साहित्य का व्यापक प्रसार आवश्यक है। आर्यसमाज के पास विपुल साहित्य है लेकिन वह अत्यन्त महंगा या अप्रकाशित होने के कारण पाठकों की पहुँच से दूर है। सत्यार्थप्रकाशनन्यासनेइस दिशा में प्रयासरत है कि उत्कृष्ट साहित्य का कई-कई हजार की संख्या में प्रकाशन एवं पाठकों में उसका वितरण कर साहित्य और पाठक के बीच की दूरी को पाटा जाए। सत्यार्थप्रकाशन के अब तक विभिन्न प्रकार की सोलह पुस्तकों का प्रकाशन किया है। यज्ञ विमर्श का यह दूसरा संस्करण हमारा सत्रहवाँ पुष्प है। हम सभी मित्रों और संस्थाओं से इस कार्य में सक्रिय सहयोग की अपेक्षा रखते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में आर्यसमाज जगाधरी, आर्य कन्या पाठशाला जगाधरी, श्रीमती कान्ता दत्ता जी(पानीपत), श्री गोपालदास गोयल जी (कुरुक्षेत्र) एवं श्री जगदीश मित्र आर्य (रोहतक) का नैतिक एवं आर्थिक समर्थन हमें प्राप्त हुआ है। इस उदार सहयोग के लिए हम सभी भद्रजनों और संस्थाओं का हार्दिक आभार ज्ञापित करते हैं। उम्मीद करते हैं यह लौ सदा प्रकाशमान रहेगी।

**राजेन्द्र विद्यालंकार**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# इतिहास एवं परम्परा

आदिकाल से मानव आनन्द-प्राप्ति एवं आत्मोन्नति के लिए प्रयत्नशील है। योगी, दार्शनिक, वैज्ञानिक सभी इसी लक्ष्य सिद्धि के लिए साधना करते रहे हैं। यज्ञ इस साधना का निखरा हुआ स्वरूप है। मनुष्य ने यज्ञ को किसी न किसी रूप में सदा ही स्वीकार किया है। इस वास्तविकता की सम्पुष्टि शास्त्रीय और ऐतिहासिक दोनों ही साक्ष्यों से होती है। अग्निहोत्र एवं यज्ञमयी भावना की सर्वप्रथम प्रेरणा मानव को स्वयं परमपिता परमात्मा से मिली। अथर्ववेद (9, 63, 1) में कहा है, ''हे ब्रह्मणस्पते! उठ खड़ा हो; यज्ञ कर; अन्य उत्तम पुरुषों को यज्ञीय भावना से अवगत करा तथा इस मार्ग का अवलम्बन करते हुए आयु, प्राण, प्रजा, पशु तथा यजमान की कीर्ति को बढ़ा।''

सृष्टिकर्त्ता ने स्वयं एक शाश्वत यज्ञ का दिव्य आयोजन कर रखा है। वह प्रभु यज्ञ भी है (यजु. 31, 7) और होता( ऋक. 1, 1, 1 एवं 10, 81, 1) भी। इसीलिए शतपथब्राह्मण (1, 1, 8, 8) ने **यज्ञो वै विष्णुः** कहा है। शतपथ (1, 7, 1, 5) ने यज्ञ को सर्वश्रेष्ठ कर्म घोषित किया है— **यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म।** छान्दोग्योपनिषद् (2, 23, 1) ने यज्ञ, अध्ययन और दान को धर्म का प्रथम स्कन्ध माना है—

**त्रयो धर्मस्कन्धाः यज्ञाध्ययनदानमिति प्रथमः।**

कालक्रम की दृष्टि से वैदिक काल का उत्तरार्द्ध व ब्राह्मणकाल बृहद् यज्ञों के लिए प्रसिद्ध हैं। इसीलिए कुछ विद्वान् इसे यज्ञकाल भी कहते हैं। ब्राह्मणग्रन्थों का तो मुख्य विषय ही यज्ञीय प्रक्रियाओं (समाविष्ट तथ्यों) की वैज्ञानिक व्याख्या करना है। यज्ञीय शब्दकोश के अनेक नूतन तथा रोचक व्याख्यान हमें इन ग्रन्थों में मिलते हैं। इन ग्रन्थों के सामाजिक अनुशासन की दृष्टि में रखकर किए गए अध्ययन से ये निष्कर्ष प्राप्त होते हैं कि उस समय प्रत्येक मास की अमावस्या तथा पूर्णिमा को बड़े यज्ञ होते थे। अमावस्या के यज्ञ का पारिभाषिक अभिधान दर्शेष्टि एवं पूर्णिमा के यज्ञ का पौर्णमासेष्टि था। श्रावणी और आषाढ़ी के अवसरों पर नए अन्नों द्वारा यज्ञ होता था। पाक्षिक, मासिक, चतुर्मासिक एवं षाण्मासिक आदि बड़े-बड़े यज्ञ किए जाते थे। उपनिषद् ग्रन्थों में भी हमें एतादृश प्रसंग मिलते हैं। कठोपनिषद् का वाजश्रवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



द्वारा सर्वमेध(सर्वहुत) यज्ञ विवरण(1, 1, 1) एवं इसी उपनिषद् में यमाचार्य द्वारा नचिकेता को दिया गया स्वर्ग्याग्नि (यज्ञाग्नि) उपदेश (1,1, 15) विशेषत: अवलोकनीय है। मनुस्मृति (4, 21) में पञ्च महायज्ञों के अनुष्ठान का विधान है—

**ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।**
**नृयज्ञं पितृयज्ञञ्च यथाशक्तिं न हापयेत्।।**

मनु महाराज ने प्रातः और सायं सन्ध्या एवं यज्ञ न करने वालों को सभी द्विज-कर्मों से निकाल देने का आदेश किया है—

**न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।**
**स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः।।**

मनु., 2, 103

रामायणकाल में महाराज दशरथ का महर्षि श्रृंग के पौरोहित्य में पुत्रेष्टि यज्ञ करवाने(बालकाण्ड 8,2-5) तथा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को भेजने (बालकाण्ड 13,1-5) की कथा सर्वविदित है। रामायणकाल से पूर्व भी महाराजा दशरथ के पूर्वजों — महाराजा दिलीप व महाराजा अज के द्वारा विजित सम्पूर्ण सामग्री से यज्ञ करने का वर्णन कविवर भास ने प्रतिमानाटकम् में किया है। ऋषि-मुनियों के आश्रमों में अनिवार्यत: यज्ञशालाएँ होती थीं। बाल्मीकी-रामायण के अरण्यकाण्ड में अगस्त्यमुनि की अग्निशाला (यज्ञशाला) की चर्चा है।

महाभारतकाल में भी यज्ञों का प्रचलन था। पाण्डवों ने खाण्डव वन जलाकर इन्द्रप्रस्थ की स्थापना की और तब श्रीकृष्ण की प्रेरणा से राजसूय यज्ञ किया गया। दुर्योधन ने सभी राजाओं को जीतने पर कर्ण की प्रेरणा से वैष्णव याग किया (महाभारत, वनपर्व, 255,19-21)। महाभारत के युद्ध की समाप्ति पर महाराज युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ रचाया। भारतीय राज परम्परा के अनुसार राजा-महाराजा अपने उत्तराधिकारी के राजतिलक के अवसर पर अनेक बृहद् यज्ञों का आयोजन करते थे।

विदेशों में यज्ञ का प्रचलन रहा है। हनुमानजी जब सीता की खोज में लंका गए तो उन्होंने वहाँ के निवासियों को यज्ञ करते हुए देखा। सुदूर पूर्व में यज्ञों का प्रचलन निकट भूत में भी था। बोर्नियो के कूटेई प्रान्त से 1879 ई. में प्राप्त शिलालेख बताते हैं कि वहाँ के सम्राट् मूलवर्मन् (400 ई.) ने बहु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



सुवर्णक यज्ञ किए थे –

श्रीमूलवर्म्मा राजेन्द्रो यष्ट्वा बहुस्वर्णकम्।
तस्य यज्ञस्य यूपोऽयं द्विजेन्द्रैः सम्प्रकल्पितः ॥

कम्बुज देश (कम्बोडिया) में वैदिक यज्ञ किए जाते थे। शिवचार्य सम्राट् ईशानवर्मन द्वितीय (925-928 ई.), जयवर्मन् (929-941 ई.) तथा राजेन्द्र वर्मन् (944-966 ई.) यज्ञ के होता थे। सम्राट् उदयादित्य वर्मदेव (1001 ई.) के समय में जयेन्द्र वर्मन् राजगुरु थे और उसने ब्रह्मयज्ञ किए। याज्ञिक को यजमान की ओर से दक्षिणा मिलती थी। सम्राट् सूर्यवर्मन् द्वितीय (1112-1113 ई.) के नोम संडक लेखानुसार उसने कोटिहोम, लक्षहोम, महाहोम तथा पितरों के लिए यज्ञ किए।[1] सम्राट् ने लक्षहोम तथा कोटिहोम के पश्चात् दिवाकर पण्डित को बहुत दक्षिणा दी। यज्ञ केवल राजवंश तक ही सीमित न थे अपितु जनसाधारण में भी लोकप्रिय थे। मध्यप्रदेश की मालिनी नाम की स्त्री द्वारा ब्रह्मयज्ञ करने का उल्लेख भी मिलता है।[2]

चम्पादेश (अनाम) के लेखों से ज्ञात होता है कि वहाँ का राजा यज्ञ करता था और उसे ब्राह्मण तथा राजपुरोहित यज्ञों एवं संस्कारों के विषय में परामर्श देते थे। ईसा की प्रारिम्भक शताब्दियों में जावा, सुमात्रा, बाली तथा मलाया प्रायद्वीपों में हिन्दुत्व ने अपना स्थान बना लिया था और यज्ञ होते थे।[2]

चीन में राजा फूसी ने यज्ञों का आयोजन किया था। चीन के यज्ञों के सम्बन्ध में डॉक्टर लैग लिखते हैं, "यज्ञों से पूर्व व्रत और अनेक प्रकार की शुद्धियों का करना राजा और उसके पुरोहितों के लिए आवश्यक होता था। सुगन्धित रसों की आहुति दी जाती थी, ताकि देवता बुलाए जा सकें और उनका आह्वान करने का काम एक कार्यकर्त्ता करता था, जो मुख्य द्वार के अन्दर की ओर खड़ा होता था।"[3]

चीन और जापान में यज्ञ को 'घोम' कहते हैं। नादविश्लेषण द्वारा 'घोम' होम का ही अशुद्ध रूप प्रतीत होता है। वहाँ मन्दिरों में आज भी धूप जलाने की प्रथा है। जापान के यज्ञों के बारे में वर्णन मिलता है कि "एक और संस्कार सुगन्धित धूप जलाने का, जोकि हेयन-काल में पहले ही प्रचलित रह चुका है, अब भी लोकप्रिय था। शुको तथा उसका शिष्य शिनोदोकन इसके सर्वाधिक प्रसिद्ध शिक्षक थे। दोकन के शिष्य शिनोशेशिन ने धूप जलाने की विधि एवं संस्कार को उन्नत करके इसे एक स्वतन्त्र कला बना दिया।"[4]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ईरान के यहूदियों में यज्ञों का बहुत प्रचलन था। वे यज्ञकुण्ड को 'कैर' कहते हैं। जिन्दावस्ता में होता को 'जोता' कहा गया है। यहूदी अब भी घर में पवित्र अग्नि (आतिशे बहराम) प्रज्वलित रखते हैं। इस अग्नि का बुझ जाना किसी भावी दु:ख एवं संकट का पूर्व संकेत समझा जाता है। जिन पुरोहितों ने अपनी आत्मा तथा शरीर की शुद्धि कर ली हो, वे इस अग्नि का पूरा ध्यान रखते हैं। इसे पत्थर की वेदी पर चाँदी या कांसे के पात्र में पवित्र काष्ठ तथा सुगन्धियुक्त पदार्थों की हवि के द्वारा प्रज्वलित रखा जाता है। जिन्दावस्ता में यज्ञवेदी के निर्माण का कोई विशेष स्पष्ट संकेत नहीं मिलता, परन्तु गृहाग्नि को शुष्क ईंधन तथा सुगन्धित पदार्थों के द्वारा प्रज्वलित रखा जाता है। कालान्तर में यज्ञवेदियों का निर्माण भी आरम्भ हो गया। प्राचीन ईरानी अग्निपूजक नहीं थे अपितु यज्ञ के द्वारा प्रभु की आराधना किया करते थे। कुछ संस्कार ऐसे हैं जिनका पूर्ण संचालन केवल पुरोहित ही करता है; कुछ ऐसे हैं जिनमें उपकरणों को सामान्य व्यक्ति भी छू सकता है और ऐसे छोटे-छोटे संस्कार कम ही हैं, जिन्हें पुरोहित तथा जनसाधरण मिलकर करते हैं। सुगन्धियुक्त लकड़ी (प्राय: चन्दन) के द्वारा अग्नि प्रज्वलित की जाती है। फिर उसमें घी, दूध, सोम बूटी का रस, पवित्र रोटी एवं पवित्र जल, फूल तथा अन्य सुगन्धित धूप की आहुतियाँ दी जाती हैं। प्राचीन ईरानियों की यह प्रथा अब तक पारसियों में प्रचलित है।[5] भारत तथा ईरान में यज्ञ सुसंगठित प्रक्रियाओं का केन्द्र था और पुरोहित वर्ग द्वारा सम्पादित होता था। सोम बूटी की, कूट-छान और दूध में मिलाकर आहुति दी जाती थी। अग्नि में हवि प्रदान करना भारतियों एवं ईरानियों की प्रथा है, जो यूनान तथा रोम में भी पाई जाती है। विवाह-संस्कार में नव दम्पति वैवाहिक अग्नि की परिक्रमा करते है; वर अग्नि में हवन करता है तथा वधू के द्वारा लाजा होम होता है। यह सब भारतीय-ईरानी प्रथा है। रोम देश में भी नव विवाहित वाम् दिशा से दक्षिण की ओर वेदी की परिक्रमा करते हैं और अग्नि में रोटी की आहुति देते हैं।[6] रोम में बेसटा देवी के मन्दिर में कुण्ड में अग्नि जलती रहती है तथा उस अग्नि में सुगन्धित पदार्थ डाले जाते हैं।

बौद्धभिक्षु चमनलाल ने अमरीका के विषय में महत्वपूर्ण खोज की है। उन्होंने लिखा है कि प्राचीन समय में वहाँ के विद्यार्थियों का कर्त्तव्य होता था कि वे मन्दिर में झाड़ू लगाएँ तथा पवित्राग्नि की देखभाल करें। बच्चे के जन्म के अवसर पर चार दिन तक यज्ञ होता था। किसी अवस्था में भी चार दिन तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



इस अग्नि को बुझने नहीं दिया जाता था। मन्दिरों में देवदासियों का एक मुख्य कर्त्तव्य पवित्र अग्नि की रक्षा करना, उसे बुझने से बचाना तथा उसमें देवताओं के लिए प्रतिदिन भोजन की आहुति देना था। भारतीयों की भाँति कृषि के देवता की आराधना के लिए प्रत्येक व्यक्ति (हॉल के बीच में रखे पात्र में जलती) अग्नि में भोजन की थोड़ी-सी आहुति देता था। युद्ध से पूर्व भी पुरोहित यज्ञ करते थे।[7]

रेड इण्डियन्स तथा मिस्त्र में भी यज्ञ का प्रचार था। आयरलैंड तथा दक्षिणी अमरीका में महामारी की रोकथाम के लिए अग्नि जलाई जाती थी। आग जलाने की प्रथा गत शताब्दी तक स्काटलैंड में भी थी।

ईसाई तथा मुसलमान भी लोबान और ऊदबत्ती जलाते हैं। अरबी भाषा में अगर को ऊद कहते हैं। अगर यज्ञ सामग्री में प्रयोग किया जाता है। सिख और जैनी भी धूप जलाकर वायु की शुद्धि करते हैं। सिख-मत एवं इतिहास के अधिकारी विद्वान् स्वामी स्वतन्त्रानन्द[8] तथा स्वामी अमृतानन्द[9] ने अपनी पुस्तकों में सिख-मत तथा गुरुओं की यज्ञ के प्रति श्रद्धा की चर्चा निम्नलिखित प्रमाणों के साथ की है—

**तित घीये होम जग सद पूजा, पइयै कारज सोहै**

वार माझ महला 1, 26

अर्थात् इस घी से हवन यज्ञ और पूजा के कार्य शोभा पाते हैं।

**होम जग उरध तप पूजा। कोटि तीर्थ इसनान करीजा।**
**चरण कमल निमख रिदै धारे।**
**गोबिन्द जपत सभि कारज सारे॥ 6॥**

राग प्रभाति महला 5, अष्ट पदियाँ 3

अर्थात् ऊँचे और पवित्र हवन-यज्ञ, तप, पूजा, करोड़ों तीर्थ-स्नान आदि शुभ कर्म करे, परन्तु हृदय में सदा प्रभु प्रेम धारण करे। प्रभु स्मरण करता हुआ ही सारे पवित्र कर्मों को पूर्ण करे।

भाई गुरदास अपनी इकतालीसवीं वार में लिखते हैं—

**निज फते बुलाई सति गुरु, कीनो उज्यारा।**
**झूठ कपट सभ छुप गए, सब सच वरतारा।**
**फिर जग होम ठहराये कर निज धर्म संवारा।**
**तुर्क दुन्द सभ उठ गयो, रचियो जैकारा॥18॥**

अर्थात् दशम् गुरुजी ने अपनी विजय की घोषणा की, अन्धेरगर्दी को मिटाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



न्याय का उजाला किया, झूठ और कपट छुप गया, सत्य का बोलबाला हो गया, हवन-यज्ञ का फिर प्रचार हुआ जिससे जनता ने अपने धर्म को संवार लिया, मुसलमानों का अत्याचार बंद हो गया, धर्म-जयकारा गूँज उठा।

इसी प्रकार भाई गुरदास ने चौथी वार में लिखा है—

**घी ते होवन होम जग, ढंग सुआरथ चज अचारा॥**

वार 4, श्लोक पद 8

'घी से हवन-यज्ञ, पर्व, शुभ कार्य और सदाचार सम्बन्धी पवित्र कर्म होते हैं।'

चीफ खालसा दीवान के प्रसिद्ध उपदेशक भाई हरनामसिंह ''सच्ची मुहब्बत'' नामक पुस्तक में लिखते हैं—

**यज्ञ होम होवना न हिन्द में कोई मूल पाता,**
**झूलते निशान नहीं आज हिन्दुवान के,**
**कहत हरनाम सिंह इसमें न झूठ जानो,**
**तीर जो न छूटते गोबिन्द सिंह जुबान के।**

अर्थात् इसमें कुछ भी शक नहीं कि यदि गुरु गोबिन्दसिंह जी जैसे वीर योद्धा के तीरों की वर्षा न होती तो भारत देश में हवन-यज्ञ न हो पाते और हिन्दुधर्म के झंडे न झूलते।

इसी प्रकार नामधारी सिखों के नित्य-नियम गुटके में लिखा है— ''साहिब गुरु गोबिन्दसिंह जी की हवन-यज्ञ के साथ ऐसी प्रीति थी कि आपजी ने सवा लाख दमड़े की सामग्री एकत्र करके नैना देवी के मन्दिर में हवन किया था।''

गुरु गोबिन्द सिंह ने जो हवन किया था, उसके विषय में ज्ञानी ज्ञानसिंह ने लिखा है कि गुरु महाराज ने अपनी सम्मति पण्डित केशवदास को इस प्रकार दी थी —

**जग-होम बेशक करावें।**
**एह तो धरम हमारा सार। करत रहे नृप मुनि-अवतार॥**
**सो तो हम भी करना चैहैं। जिसते सभ सृष्टि सुख पैहैं॥**
**इक तो अब दुरभिख अति भारी। है पड़ रहिओ न बरसत बारी॥**
**दूसर भारतवर्ष मंझारे। महामारी पड़ रही अपारे॥**
**त्रितीए जो नर नारी आरज। होई रहे निज धरमों खारज॥**
**पाप कुकरमन में अति लागे। इसी हेतु बन रहे अभागे॥**
**जग्य हवन लों सुकृत जे हैं, हाकम तुरक करन ना दैहैं॥**
**हम जब हवन जग्य करवै हैं, खुश होई घन जल बहु बरसै हैं॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दुरभिख नासे अन्न बहु पै हैं। धरनी रस सभ विधि प्रगटै हैं ॥
पवन हवन ते शुद्ध भवै हैं। रोग सोग सब दूर नसै हैं ॥
बुद्धि शुद्ध नर नारिन लैहैं। सुकृत सब करने लग जैहैं ॥
नसे अविद्या विद्या ऐ हैं। सूरवीरता दृढ़ प्रगटै हैं ॥
वर्णाश्रमी जन हैं जेते। काइरता कर पूरन तेते ॥
भेड़ बकरिआँ सम होई रहे। वाञ्छित काम तुरक सबल है ॥
इने हवन की पवन लगे जब। शेर बघिआइन से ह्वै हैं तब ॥
सूरवीरता उर में जग है। धरम पुरातन करने लग है ॥
प्रभता देह अरोग कराती। विजय गिआन संतत सुख दाती ॥
निरभयता जस, गुण देवी सब। होहि प्रापत गुर घर में तब ॥
बालक भाग्यवान प्रगटै हैं। रोग सीतला आदि नसै हैं ॥
कामादिक सब असुरी संपति। जग्य होम को पिखके कंपत ॥
उत्तम गुण सत आदिक जै हैं। बाबन कहे वेद रिग में हैं ॥
सो अवश्य जग में वरते हैं। जग्य हवन विधिवत ह्वै हैं ॥

पन्थप्रकाश, निवास 25, पृष्ठ 202

अर्थात् "हे पण्डितजी! हवन-यज्ञ तो हमारे धर्म का सार है, इसे तो राजे महाराजे ऋषि-मुनि और अवतार करते चले आए हैं, इसलिए हम भी इसे करना चाहते हैं, जिससे सारे संसार को सुख हो, एक तो भारी अकाल पड़ रहा है, वर्षा हुई नहीं, दूसरे देश में रोग फैल रहा है, तीसरे स्त्री-पुरुष आर्य धर्म से विमुख हो रहे हैं अर्थात् पाप-कर्म में लग रहे हैं और अभागे बन रहे हैं। मुसलमान हाकम यज्ञादि शुभ-कर्मों को करने भी नहीं देते।

हम जब हवन-यज्ञ करेंगे तो फल यह होगा कि बादल प्रसन्न होकर जल बरसावेंगे, अकाल नहीं रहेगा, अन्न अधिक उत्पन्न होगा, अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि होगी, शूरवीरता आएगी, जनता शुभ कर्म करने लगेगी, वर्ण-आश्रमी जो कायर बन रहे हैं, उन्हें जब हवन की वायु लगेगी, तो शेरों की तरह शक्तिशाली होंगे, उनके हृदय में शूरवीरता उत्पन्न होगी, तब प्राचीन धर्म को करने लगेंगे, इनमें प्रभुता, अरोग्यता, क्रान्ति, विजय का ज्ञान और उत्तम सन्तान उत्पन्न होगी। निर्भयता, यश और सब दैवी गुण गुरु घर में आ जाएँगे। भाग्यवान् बालक जन्म लेंगे, शीतलादि रोग नष्ट होंगे, काम-क्रोधादि आसुरी भाव हवन-यज्ञ को देख काँपने लगेंगे, सत्य धर्म आदि बावन प्रकार के गुण जो ऋग्वेद में लिखे हैं वे अवश्य ही जगत् में आएँगे, जबकि हम विधिवत् हवन-यज्ञ करेंगे।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह हवन-यज्ञ कई मास तक होता रहा, पण्डित केशोदास इसके ब्रह्मा थे और कई ब्राह्मण यज्ञ में सहायक थे। गुरुजी यजमान(होता) थे। जब यज्ञ पूर्ण हुआ तो जनता में बड़ा उत्साह था और इस यज्ञ का उत्तम फल निकला। तब पण्डित केशोदास ने कहा –

आप हवन के नफ़े जो गाये। होई अवश्यमेव सब भाये॥
पर उपकार जगत पर भारी। होई आपका जग सुखकारी॥

पन्थप्रकाश, निवास 25, पृष्ठ 202

ज्ञानी ज्ञानसिंह लिखते हैं कि सतलुज नदी के तट पर गुरु जी के बाग में एक सुन्दर जगह देखकर यह ऐतिहासिक यज्ञ होने लगा। चैत्र मास संवत् 1754 के नवरात्रों में शुभ लग्न में आरम्भ किया गया। भारी सामग्री के साथ घी की धार परनाले की भाँति हवन कुण्ड में पड़ती थी। चार मास तक हवन होता रहा, तब बड़ी वर्षा हुई।

आनन्दपुर तट सतलुजे गुर के बाग मझार।
हवन होन लागिओ तहाँ, पिख स्थान उदार॥
सत्रां सै चुरंजा चेत नवरात्रा के मांही।
लगन महूरत सोध भले सब हवन अरंभयो वांही॥
केशव हवन करावन बैठे गुरु आहुति देते।
वरनी करनी और विप्रन ठानी सांती हेते॥
सामग्री युत परनारे सम धारा घृत पवे है।
चार मास तहि हवन भयो जब वर्षा लगी अते है॥
फिर नैना देवी टिले पर असथल वेख सुहावन।
जाई हवन करने गुर लागे दिजवर बैठे करावन॥

पन्थप्रकाश, निवास 26, पृष्ठ 204

## पूर्णाहुति

तब गुर सरव सामग्री हवनकुण्ड के मांही।
एकहि वेर जब पावसी चानण भए महांहि॥

पन्थप्रकाश, पृष्ठ 205

## लोकचर्चा हुई

अब तुरकन के जुलम ते छुट जै है हिन्दुवान।
मुसलिआं को गुरु मार है ठान घने घमसान॥
या विधि कर सतगुरु निज कार्य।
आनन्दपुर दिन आये आर्य॥ पन्थप्रकाश, पृष्ठ 205

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यज्ञ का फल, जो उस समय प्रगट हुआ
जा दिन ते जग्य होम करयो गुर, पूर रहयो जस भूर उदारे।
घोर जिते जग्य होमन के फल, वेद भने वरते जग सारे॥
वारस होन लगी मनवाञ्छित, रोग विसूचिक लौं सब टारे।
लोगन केर स्वभाव स्वते सिध, थे बदले सब काज विधारे।।3॥
फैल रहे फल फूल युक्ततरु, औ उगले धरनी रस सारे।
तेज लगो तुरके घटनो, चमके हिन्दवाइन वांग सितारे।
भै मिटायो सतईतन को सभ, और उपद्रव ईस निवारे।
देन लगी बहु दूधगऊ महि, होन लगे अन्न घास पारे ॥4॥
लोग सिआने कहें मिलयौं इह, होम सु जग्य गुरै बडिआई।
भारत भूमि विखै अति आनन्द, होइ गयो सतजुग निआई॥
मन्द स्वभाव कुकरम क्लेस, गये उठ यों रवि ते तम जाई।
होत विचार घरो घर यों गुर कीरति फूली मनो फल वाई।।5।।

पन्थप्रकाश, निवास 26, पृष्ठ 208-9

रोग कटावन होम महा सकती, विदतावन की सुनके।
संगत देस विदेसन ते, बहु आने लगी गुर पै गुनके।
इसमें धन भूर गुरे खरचिओ, इह सोच चढावहि दुगुनके।

पन्थप्रकाश, पृष्ठ 208-9

इस लेख का भाव यही है कि गुरु गोबिन्दसिंह जी ने यज्ञ करना श्रेष्ठ पुरुषों का कर्त्तव्य बताया और उसके फल रोग-निवृत्ति, समय-समय पर वर्षा होना, दुर्भिक्ष का मिटना, जनता में सुख होना, लोगों में सद्भावना आना आदि माना। यज्ञ समाप्त हुआ, लोगों में नाना प्रकार के वाद चले, और देश में उस यज्ञ के अच्छे फल हुए। उससे गुरुजी की ख्याति भी बढ़ी। इस प्रकार इस लेख से सिद्ध है कि गुरु गोबिन्दसिंह जी ने स्वयं हवन किया। वह हवन के प्रबल समर्थक थे।

इस समय भी सिखपन्थ में एक नामधारी नाम का दल है। उसके प्रवर्तक सतगुरु रामसिंह जी भैणी राइयां जिला लुधियाना वाले हैं। उनमें अब भी हवन का प्रचार है। उनके अनुयायी निधानसिंह आलिम लिखते हैं, "श्री सतगुरु रामसिंह जी ने अपने धरम-प्रचार दे प्रोग्राम विच यग्य होम नूं विशेष रूप विच प्रचारिआ है। हर दीवान दी समापति दे समे होम कीता जांदा है। हवन दी मरयादा जो श्री सतगुरु रामसिंह ने उचारन कीती, इउं है। पहलां चौका देणा होम दी जगह, लकड़ी होम विच पलाश दी पौणी जां बेरी दी पौणी, फूंक नहीं मारनी होम दी अग नूं, पक्खे नाल झलणा पंजां आदमियां ने होम विच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पोथीआं तों वाणी पढ़नी, चौपाई जपु, जाप, चण्डी दी वार, उग्रदन्ती, चण्डी चरित्र, अकाल अस्तुति। छवां आदमी आहुति पावे, सतवां नाल-नाल जल दा छिटा देवे थोड़ा-थोड़ा। वधेरे वा कवी हवन करने वाले सत सिंघ इसनान करके सुध देही, सुध वसत्र पहन के तयार वर तयार हो जाण। हवन वाले थां नू लिपण पोचण वाली मिटी विच गोहा नही रलौणा, वेरी जां कपाह दीआं लकड़आं निकीआं-निकीआं करके हवन कुण्ड विच जोड देणीआं ते विच इस साबत नलेर (नारियल) रखकेवसंत्र जगाणी। उपरंत अरदास करके वाणीआं पढ़नी- आं। वाणीआं दी समापती ते फेर अरदास करके जैकारा गजा देणा( घोष करना)।''[10]

इसी प्रकार कुछ अन्य मतावलम्बी भी अग्निहोत्र करते हैं। बिश्नोई मत के विषय में हीरालाल महेश्वरी[11] लिखते हैं, ''धर्म नियम क-9; निष्ठा और प्रेमपूर्वक हवन करना; प्रतिदिन प्रातःकाल घी से हवन करना एक नित्य कर्म है, जो वैदिक परम्परा का पालन है। हवन करते समय एक विशेष लययुक्त उच्च स्वर में सबदवाणी का पाठ किया जाता है जिसकी परम्परा जम्भजी की विद्यमानता में ही आरम्भ हो गई थी।'' नामधारियों की भाँति बिश्नोई भी यज्ञ करते समय वेदमन्त्रोच्चारण नहीं करते, अपितु अपने ग्रन्थों का पाठ करते हैं।

इतिहास में एक ऐसा समय भी आया जब भारतवर्ष में यज्ञोपवीत तथा अग्निहोत्रादि पर केवल एक वर्ग विशेष का ही अधिकार रह गया था। स्थिति इतनी गम्भीर हो गई थी कि शिवाजी महाराज को भी यज्ञोपवीत और शास्त्र पद्धति से राज्याभिषेक का अनाधिकारी घोषित कर दिया गया था। तब उन्हें राज्याभिषेकोपरान्त छत्रपति घोषित होने के लिए अनेक अनुष्ठान करने पड़े थे जिन पर उस समय लगभग पाँच करोड़ रुपये व्यय हुए थे।[12] कालान्तर में विभिन्न वर्णों के सत्चरित्र जन साधारण को यज्ञोपवीत तथा अग्निहोत्रादि का पुनः अधिकार देने का श्रेय आचार्य दयानन्द सरस्वती को जाता है। परिणामस्वरूप विभिन्न वर्गों में यज्ञ का पुनः प्रचलन हुआ। शहीद भगतसिंह के दादा अर्जुनसिंह तो प्रतिदिन यज्ञ करते थे। स्वयं भगतसिंह का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ था। रामप्रसाद बिस्मिल आदि अनेक शहीद यज्ञ में श्रद्धा रखते थे।

ग्रामीण अंचल में स्थापित देवालयों को ऋषि दयानन्द सरस्वती यज्ञ करने का स्थान मानते हैं। ऋषिवर लिखते हैं, ''मूर्ति को स्थापन करने, पूजने के स्थान, जिनमें कि घण्टानाद, आर्त्ति आदि करते हैं, उनको 'देवालय' कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हो, तो ठीक नहीं ... इससे जिसमें होम किया जाता, वही स्थान 'देवालय' शब्दवाच्य हो सकता है, क्योंकि 'देवपूजा' शब्द से होम का ग्रहण है।''[13] गाँव के शिवालय यज्ञमण्डप ही समझे जाने चाहिएँ। आज तक भी यज्ञशालाओं की तरह इनमें आठ दरवाजे होते हैं; जिनमें सात तो प्राय: बंद कर दिए जाते हैं, केवल एक दरवाजा ही आने-जाने के लिए खुला रखा जाता है। कालान्तर में इन मण्डपों में यज्ञकुण्ड के स्थान पर शिवलिंग की स्थापना की गई प्रतीत होती है, अन्यथा मूर्तियाँ मन्दिर के बीच में नहीं, अपितु दीवार के साथ लगी होती हैं। अत: भारत में तो गाँव-गाँव में यज्ञ का प्रचार रहा है।

## संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. R.C Majumdar, Kambujadesa, University of Madras, (1944)

2. बैजनाथपुरी, सुदूर पूर्व में भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश (1962)

3. From Su king's translation

4. The Russo-Japanese War, Vol.VI, p.576

5. E.S. Dadabhai Bharucha, Zoroastrain Religion and Customs, Tarapore Vale Sons & Co., Bombay (1928)

6. A.A McDonell, A History Of Sanskrit-Literature, Munshi Ram Manohar Lal, New Delhi (1970), p.263

7. Chaman Lal, Hindu America. Paragon Book Gallery, New York (1966), pp.65,70,72,78

8. स्वामी स्वतन्त्रानन्द, आर्य सिद्धान्त तथा सिख गुरु, विद्या-प्रचारिणी समिति(ट्रस्ट) पेप्सू, पटियाला, सम्वत् 2009 वि., पृष्ठ 133-137

9. स्वामी अमृतानन्द सरस्वती, गुरु ग्रन्थ का वैदिक पन्थ अर्थात् खालसा-ज्ञानप्रकाश, वैदिक साधनाश्रम, यमुनानगर, 1965 ई., पृष्ठ 99-104

10. निधानसिंह आलम, हवनप्रकाश, पृष्ठ 16-17

11. Hira Lal Maheshwari, Jambhoji, Sahitya Academy, New Delhi (1981), pp.57-58.

12. रामप्रकाश डॉ., सत्यार्थप्रकाश-विमर्श, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला(हिमाचल प्रदेश), 2004

13. ऋषि दयानन्द सरस्वती, वेदविरुद्धमतखण्डनः, दयानन्द-ग्रन्थमाला, प्रथम खण्ड, परोपकारिणी सभा, अजमेर (1983), पृष्ठ 679

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# भावना

महात्मा बुद्ध ने अपने अनुभव के आधार पर जो चिन्तन दिया, उसका भारतीय जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ा है। उनका यह विचार कि 'संसार दुःखों का घर है'–इतना प्रभाव डालता चला गया कि गुरु नानकदेव ने फ़रमाया –"**नानक दुखिया सब संसार।**" किसी सामान्य व्यक्ति से गली–मोहल्ले में पूछिए - 'क्या हाल है ? समय कैसा बीत रहा है ?' तो पुराने ढंग से सोचने वाला व्यक्ति एक उत्तर देता है, 'जो समय कट जाए, अच्छा है।' ऐसा लगता है जैसे व्यक्ति दुःखों से अत्यधिक घिरा हुआ है। ऋषिवर दयानन्द इस दर्शन से सहमत नहीं हैं। बौद्धमत की समीक्षा करते हुए ऋषिवर लिखते हैं, "जो सब संसार दुःखरूप होता तो किसी जीव की प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए। संसार में जीवों की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दीखती है, इसलिए सब संसार दुःख रूप नहीं हो सकता, किन्तु इसमें सुख–दुःख दोनों हैं।"[1] यदि व्यक्ति इस सुख और दुःख के सन्तुलन को सुख की ओर ले जाना चाहता है और अपने जीवन में दुःखों को दूर करना चाहता है, तो उसे प्रत्येक कर्म को यज्ञमयी भावना के साथ करना चाहिए। शास्त्रकार यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म बताते हैं। इसलिए मैं जो भी काम करूँ उसे यज्ञमयी भावना के साथ करने का प्रयत्न करूँ। यदि मैं ऐसा करता हूँ तो इस संसार में दुःखों को कम करके सुखों की वृद्धि करता हूँ। ऐसा ही भाव यज्ञ शब्द से ऋषिवर दयानन्द ने स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश में इसकी परिभाषा करते हुए लिया है।[2] उनके अन्य लेखों में भी यही बात झलकती है।

यज्ञ शब्द के तीन प्रमुख अर्थ हैं - देव पूजा, संगतिकरण और दान। जो व्यक्ति कुछ देता है– सुख देता है, आराम देता है, ज्ञान देता है – वह देव है। उसका आदर–सत्कार करना देव पूजन है, सही उपयोग करना देव पूजा है। मैं नंगे पाँव चला जा रहा हूँ। रास्ते में काँटा पड़ा है, मेरे पाँव में चुभ जाता है, पीड़ा होती है। मेरे पास काँटा निकालने के लिए कुछ नहीं है। बगल की कीकर से एक और काँटा तोड़कर पहले काँटे को निकालता हूँ। मुझे सुख मिलता है। जो काँटा कीकर से तोड़ा है उसने मुझे आराम दिया, सुख दिया। मेरे लिए वह देवता है और उसका सही उपयोग देव पूजा है। यज्ञ का दूसरा अर्थ है– संगतिकरण। यज्ञ के लिए मैंने सामग्री का चयन कर लिया, यज्ञ पात्र भी ले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लिए, यज्ञ कुण्ड ले लिया, घृत ले लिया। मैं इनका सदुपयोग भी समझता हूँ ; परन्तु इतने मात्र से यज्ञ नहीं हो जाएगा। यज्ञ करने के लिए इन वस्तुओं का संगतिकरण नितान्त आवश्यक है। संगतिकरण से पहले इनके गुणों व दोषों का विश्लेषण करके जो पदार्थ जिस योग्य है उसके उपयोग पर ध्यान देना पड़ेगा। यज्ञ का तीसरा अर्थ दान है। देने वाले की भावना जितनी अधिक स्वार्थरहित होती है, तथा लेने वाला जितना देव पूजन करता है, संगतिकरण उतना ही सुदृढ़ होता है। संगतिकरण के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति में त्याग की भावना हो। इसीलिए यज्ञ में बार-बार इदन्न मम का पाठ किया जाता है। संगतिकरण के लिए दूसरे की बात समझने की चाह आवश्यक है। आज व्यक्ति दूसरे को अपना मत समझाना चाहता है, दूसरे का विचार समझना नहीं चाहता। दूसरे के विचार को समझने का प्रयत्न करे तो संगतिकरण सुदृढ़ हो सकता है, अन्यथा नहीं।

आज देवपूजा, संगतिकरण और दान – इन तीनों बातों का अभाव है। छोटा बड़े का सत्कार करना नहीं चाहता; शिष्य अध्यापक का आदर नहीं करना चाहता और बच्चा माता-पिता का। बड़े के पास जो कुछ देने के लिए है, वह उसे देने के लिए उद्यत नहीं है। न देवपूजा हैं, न दान। परिणाम यह है कि संगतिकरण नहीं हो पाता। जब तक संगतिकरण नहीं होगा, यज्ञ नहीं बन पाएगा और यज्ञ बने बिना कर्म श्रेष्ठ नहीं बनेगा। श्रेष्ठ कर्म नहीं है तो सुखों की वृद्धि नहीं होगी। दुःखों का बखेड़ा जकड़े रखेगा।

शास्त्रकारों ने यज्ञ सामग्री, समिधाओं तथा घृत को अच्छी प्रकार शोधकर परख लेने की बात कही है। यदि बिना शोध किए उनका मेल करवाने का प्रयत्न किया जाएगा तो अच्छा नहीं होगा। इसीलिए ऋषिवर दयानन्द ने हव्य द्रव्यों के विषय में बड़े प्यारे शब्दों में कुछ बातें लिखी हैं। समिधा की चर्चा करते हुए वे लिखते है, "समिधा कीड़ा लगी, मलिन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हो, अच्छे प्रकार देख लेवें।"[3] वे पूरी तसल्ली करने की बात कहते हैं। यज्ञ के शेष द्रव्यों के विषय में वे लिखते हैं, "होम के सब द्रव्यों को यथावत् शुद्ध कर लेने अवश्य चाहिए, अर्थात् सबको यथावत् शोध-छान, देख-भाल, सुधारकर करें।"[3] एक अन्य प्रसंग में वे लिखते हैं, "जितनी आहुति देनी हो, प्रत्येक आहुति के लिए चार-चार मुठी चावल आदि लेकर-अच्छे प्रकार जल से धोकर पाकस्थली में डाल अग्नि में पका लेवें।"[3] घी को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अमृत (रसायन) माना गया है। घी के बारे में कहा जाता है कि घी पिलाओ तो जहर उतर जाता है। फिर भी ऋषि दयानन्द लिखते हैं, ''घृतादि जोकि उष्णकर, छान पूर्वोक्त सुगन्ध्यादि पदार्थ मिलाकर तैयार''[3] किया गया हो। ''घृत को तपा लेवें ... उस घी को अच्छे प्रकार देख लेवें।''[4] अत: ऋषि दयानन्द सरस्वती मानते हैं कि यज्ञ में जो सामग्री, घी तथा समिधाएँ प्रयोग की जाएँ, उनको अच्छी तरह परख लें, देख लें, जाँच लें।

समाज एक यज्ञ है। परिवार एक यज्ञ है। जिस संस्था में हम काम करते हैं, वह भी एक यज्ञ है। हम उस यज्ञ में अर्पित होने वाली सामग्री हैं, हव्य द्रव्य हैं, समिधाएँ हैं। यदि छोटा-सा अग्निहोत्र जो प्रात: या सायंकाल किया जाता हैं, उस यज्ञ में घुन लगी समिधा नहीं डाली जानी चाहिए, तो क्या परिवार के, समाज के, संगठन के, संस्था के ... यज्ञ में घुन लगी हुई समिधा अर्पित करनी चाहिए? ऋषि दयानन्द के आने से पूर्व बाल-विवाह होते थे। ऋषि दयानन्द ने उनका विरोध किया। बाल-विवाह यज्ञ में कच्ची समिधा आर्पित करना था। वृद्ध-विवाह होते थे। उनका भी विरोध किया ऋषि दयानन्द ने। ये घुन लगी समिधा थी। यज्ञ में घुन लगी समिधा भी नहीं डाली जा सकती।

यदि हम अग्निहोत्र अथवा यज्ञमयी भावना से कोई काम करना चाहते हैं तो हमें स्वयं को समिधा के रूप में अर्पित करने से पहले अपने अन्दर झांककर अपने गुण और दोष देखने पड़ेंगे। यदि मेरे अन्दर अवगुण हैं, तो अर्पित कर देने के पश्चात् दुर्गन्ध पैदा होगी, सुगन्धयुक्त वातावरण नहीं बन पाएगा।

व्यक्ति यज्ञ में स्वयं को अर्पित करने से पूर्व अपने-आपको तपाता है, परखता है। भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के दिनों की अमर कथा है। भगतसिंह, राजगुरु और उनके अन्य साथी बैठे हैं। चर्चा चल रही है कि जिसे अंग्रेज़ पकड़ लेता है, उस पर बड़े अत्याचार करता है। सर्दी का मौसम है। साथी बैठे अंगीठी ताप रहे हैं। राजगुरु एक संडासी उठाते हैं, आग में डाल देते हैं, बात करते रहते हैं। थोड़ी देर पश्चात् आग में डाली संडासी लाल हो जाती है। राजगुरु उसे उठाकर बड़ी हसरत भरी निगाहों से देखते हैं। फिर अपनी छाती के बटन खोलते हैं; उस लाल-लाल संडासी से अपना मांस पकड़ते हैं, जलाते हैं, खींच लेते हैं। भगतसिंह ने हाथ पकड़ लिया, बोले—''क्या हो गया तुम्हें? क्या कर रहे हो यह?'' राजगुरु ने कहा—''कुछ नहीं, यार। स्वाधीनता की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



लड़ाई लड़ना चाहता हूँ और तुम कहते हो अंग्रेज़ बड़े अत्याचार करता है। मैंने सोचा, इससे अधिक क्या करेगा? मेरे जिस्म की चमड़ी को गर्म चिमटों के साथ जला देगा। यदि मैंने उफ़ कर दी, तो मैं इस यज्ञ में समर्पित करने के योग्य समिधा नहीं हूँ। यदि उफ़ न की, तो मैं इस योग्य हूँ कि मुझे हव्य द्रव्य के रूप में अर्पित कर दिया जाए।''[5] इस तरह जब व्यक्ति अपने आपको परखता था, सुन्दर परिणाम निकलता था।

रामप्रसाद बिस्मिल देश की स्वतन्त्रता के लिए सर्वस्व होम कर देते हैं। फाँसी की कोठरी में बैठे हैं। उन्होंने अपना बड़ा प्यारा जीवन-चरित लिखा है। जिसने उसे न पढ़ा हो, अवश्यमेव पढ़े। विश्व के इतिहास में जेल के सींखचों के पीछे बैठकर तो अनगिनत पुस्तकें लिखी गईं; परन्तु फाँसी की कोठरी में बैठकर केवल दो पुस्तकें लिखी गई हैं। एक विदेशी ने लिखी है, दूसरी अमर शहीद रामप्रसाद बिस्मिल ने। फाँसी की कोठरी में लिखा उनका जीवन-चरित हिन्दी साहित्य की एकमात्र ऐसी रचना है। बिस्मिल जेल की कोठरी में बैठकर अग्निहोत्र करता है। सोचता है, मैंने भी क्या नाटक रच रखा है, एक छोटा-सा हवन कुण्ड लिया, चार समिधाएँ अर्पित कीं, 'इदन्न मम' कहा और अग्निहोत्र हो गया। क्यों न इस राष्ट्र के कुण्ड में अपनी देह की समिधा की आहुति देकर माँ भारती के प्रति अपना ऋण उतारने का प्रयत्न करूँ? और जिस दिन फाँसी के फन्दे को चूमने की उसकी बारी आती है– कहते हैं रामप्रसाद बिस्मिल का भार बढ़ जाता है। अंग्रेज़ ने पूछा, बताओ रामप्रसाद बिस्मिल किस संस्था में तुमने यह ट्रेनिंग ली है? कौन है तुम्हारा आचार्य? बिस्मिल आज अपनी परीक्षा में सफल हुआ है, अतः वह गर्व के साथ कहता है – ''जानना चाहते हो? मेरी वह संस्था आर्यसमाज है और मेरा वह आचार्य दयानन्द है, जहाँ मैंने अपने आपको तपाकर, शोधकर इस तरह का बनाया है।''

यज्ञसामग्री एकत्र कर ली, परख भी ली। फिर भी तब तक यज्ञ नहीं होता जब तक किसी यजमान का चयन नहीं कर लेते। यजमान वह व्यक्ति है जो कोई पवित्र काम करने का संकल्प लेता है, मन में एक इरादा धारता है। यजमान का एक गुण है – वह पहली आहुति अपनी देता है। यजमान कहता है– **अयं त इध्म आत्मा जातवेदः**। हे अग्ने! तेरे लिए सबसे पहला ईंधन '**अयं आत्मा**' – यह यजमान, स्वयं है। वह किसी और की नहीं, अपनी आहुति देता है। यह अन्तर रहा है भारतीय पद्धति से सोचने वालों में और पश्चिम के लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में। यहाँ का आदमी कोई काम करने से पहले स्वयमेव उस रास्ते पर चलने का प्रयत्न करता था और दूसरों को अपना अनुकरण करने की बात कहता था। लेकिन पश्चिमी रंग में रंगा व्यक्ति मानता है कि जो वह करता है वह करना आवश्यक नहीं है; जो वह कहता है उसके अनुसार आचरण करो।

यजमान पहली आहुति अपनी देता है। याद करो मेवाड़ के उस अमर हुतात्मा महाराणा प्रताप को। एक प्रात: अपने बेटे के सिर पर हाथ रखकर दूसरे हाथ में मेवाड़ की मिट्टी को लेकर सोचता है, 'आज मेवाड़ के ऊपर मेवाड़ियों का राज्य नहीं है, आज यहाँ हमारी सभ्यता और संस्कृति सुरक्षित नहीं हैं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक मेवाड़ पर मेवाड़ियों का राज्य स्थापित नहीं कर लूँगा तब तक चैन से नहीं बैठूँगा, बिछौने पर नहीं सोऊँगा, सोने-चाँदी के पात्रों में भोजन नहीं करूँगा।' उस दिन महाराणा प्रताप ने जो यज्ञ आरम्भ किया था, उस दिन महाराणा प्रताप जिस यज्ञ के यजमान बने थे, वह यज्ञ 15 अगस्त, 1947 को सम्पन्न हुआ, जब भारत स्वाधीन हुआ। कालान्तर में महात्मा गाँधी ने सत्य और अहिंसा के आधार पर भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का यही यज्ञ रचा था। गाँधी इसी यज्ञ के यजमान बने थे। महात्मा गाँधी ने इसी यज्ञ में अपनी आहुति दी थी। उस यजमान ने यज्ञ में याज्ञिकों का आह्वान किया था। हुतात्माएँ आती रहीं। यज्ञ चलता रहा –

**मैं अकेला ही चला था जानिबे मंज़िल मगर।**
**लोग आते ही गए और काफ़िला बनता गया॥**

कई बार यजमान जब यज्ञ करने लगता है तो उसकी समिधाएँ बग़ावत कर देती हैं। आर्यसमाज के इतिहास में स्वामी श्रद्धानन्द महाराज (महात्मा मुंशीराम) का नाम अमर है। उनके सुपुत्र इन्द्र विद्यावाचस्पति ने एक संस्मरण लिखा है। बात छोटी-सी है, परन्तु ऐसी है जिसे भुलाया नहीं जा सकता। वे लिखते हैं – पिताश्री ने सोच लिया कि गुरुकुल स्थापित करना है। गंगा के किनारे जहाँ अन्य परिवारों के बच्चों को लेकर गए, हम दोनों बेटों को भी लेकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। यजमान हैं स्वामी श्रद्धानन्द। पहली आहुति तो अपनी डाली जानी है, इसलिए इन्द्र और हरिश्चन्द्र दोनों को गुरुकुल में बैठा देते हैं। रात को उस जंगल में शेरों की आवाज़ें आती थीं, सुख-सुविधा का कोई साधन नहीं था, तपस्या का जीवन था। एक नया प्रयोग किया जा रहा था। पता नहीं था कि गुरुकुल का क्या भविष्य बनेगा? यहाँ पढ़ने-लिखने के पश्चात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



कुछ बनेगा भी या नहीं? वहाँ दोनों भाइयों का मन नहीं लगता। एक दिन उन्होंने सोचा, क्यों न पिताश्री को कह दें – 'पिता जी! यदि आपको गुरुकुल की धुन लगी है तो उसका दण्ड हमें क्यों? आप चलाना चाहते हो गुरुकुल तो चलाओ! हम जिस राह पर जाना चाहते हैं, हमें उस पर जाने दो।' दोनों ने निर्णय लिया, महात्माजी से समय माँगा, भेंट हुई। महात्मा मुंशीराम ने कहा – 'बेटे! बोलो क्या बात है? क्या कहने आए हो?' साहस बटोरा उन्होंने, बोले – 'पिताजी! गुरुकुल में हमारा मन नहीं लगता। आप गुरुकुल चलाना चाहते हो, हम आपके रास्ते में नहीं आते, परन्तु हमें क्यों बाधित किया जा रहा है यहाँ रहने के लिए?' आज यज्ञ में अर्पित समिधा यज्ञ कुण्ड से बाहर निकलना चाहती है, बग़ावत थी। इन्द्र विद्यावाचस्पति लिखते हैं कि पिताजी बोले नहीं, पर उनके चेहरे पर जो भाव था उसे जब हम दोनों भाइयों ने पढ़ा तो आत्मग्लानि हुई। क्यों ऐसा विचार अपने मन में आने दिया हमने? बिना इस बात की प्रतीक्षा किए कि वे क्या उत्तर देंगे, हमने सिर झुकाया, मानों हम अपना अपराध स्वीकार कर रहे थे और उठकर चले आए। इन्द्र लिखते हैं कि हमें सदा इस बात का दुःख रहा है, हम प्रायश्चित करते रहे हैं कि हमसे उस यज्ञ के यजमान की भावना के साथ खिलवाड़ हुआ था।

चाहे कितना ही दृढ़ संकल्प व्यक्ति क्यों न हो, वह अकेला यज्ञ पूरा नहीं कर सकता। यजमान प्रातःकाल अग्निहोत्र करता है, तो वेदी के चारों ओर कुछ लोगों को बुलाकर बैठाता है। जब महात्मा गाँधी ने स्वतन्त्रता संग्राम आरम्भ किया तो पुकारा भारत के लोगों को। कहा – 'आओ! मेरा साथ दो ताकि देश स्वतन्त्र करवा सकूँ।' नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने इस भारत-भू से दूर खड़े होकर कहा – 'हे मेरे देशवासियो! आओ, तुम मुझे अपना सिर दो, अपना खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा। वह देखो लाल किले की दीवार। वह मेरे यज्ञ का यज्ञ कुण्ड है। वह तुम्हें आहुत होने के लिए पुकारती है।'

यजमान दूसरे को यज्ञ में हिस्सेदार बनने के लिए बुलाता है। जिनके सहयोग से वह यज्ञ करता है, उन्हें बराबर का भागीदार मानता है। आपने कभी ऐसा भी कोई मन्त्री अथवा प्रधान देखा जो किसी व्यक्ति को कहे– 'देखिए भैय्या! आप एक दिन में अस्सी रुपये कमाते हैं। एक घंटे का समय मुझे आपका चाहिए। दस रुपये तुम्हें दूँगा। यज्ञ पर बैठ जाओ।' तीन आदमी ले लिए। तीस रुपये दिए और उनकी छुट्टी। उसके पश्चात् वे अपना रास्ता नापें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और यह अपना काम करें। न, नहीं, बिलकुल नहीं, वे बराबर के हिस्सेदार हैं। यज्ञ का संकल्प एक व्यक्ति ने लिया था, पर वह अपनी सीमाएँ जानता है, अपनी क्षमताएँ पहचानता है, जानता है अकेले काम नहीं कर पाएगा। हम कोई कारखाना चलाते हैं, व्यापार करते हैं, कोई दफतर खोलते हैं, किसी संगठन में काम करते हैं, उसमें किसी का सहयोग लेते हैं, क्या हम उसे बराबर का भागीदार मानने के लिए उद्यत हैं? कदापि नहीं। यदि हम उसे बराबर का हिस्सेदार मानने के लिए तैयार नहीं तो हमारा यह काम कुछ और हो सकता है, पर यज्ञ नहीं। इसमें जो भावना है वह यज्ञमयी भावना नहीं है। हर व्यक्ति का यज्ञ के लिए आह्वान नहीं किया जा सकता, न उसे इस काम के लिए प्रयुक्त करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति यजमान नहीं बन सकता। हर व्यक्ति हिस्सेदारी नहीं कर सकता, पर जिसे साथ लेकर चले हो, यदि उसे बराबर का हिस्सेदार नहीं मानते तो बड़ा पाप करते हो; यज्ञमयी भावना के विपरीत काम करते हो, अपराध है यह।

यजमान अग्नि प्रज्वलित करता है। यह यज्ञाग्नि संकल्प का प्रतीक है। अग्नि जितनी अधिक प्रज्वलित होगी, यज्ञ उतनी अच्छी प्रकार हो पाएगा। बुझी हुई अग्नि में आहुति नहीं देते। पहले उसे अच्छी तरह धधका लेते हैं। इसी प्रकार व्यक्ति का संकल्प जब तक पक्का नहीं होगा, उसके जीवन में सोचा हुआ कार्य सम्पन्न नहीं हो पाएगा। मैं कोई काम करना चाहता हूँ, सोचता रहता हूँ, करूँ या न करूँ – मेरे संकल्प की अग्नि धीमी है। क्या परिणाम निकलेगा?

**इरादे बाँधता हूँ, सोचता हूँ, तोड़ देता हूँ।**
**कहीं ऐसा न हो जाए, कहीं वैसा न हो जाए।।**

ऐसा व्यक्ति यज्ञ नहीं कर सकता। मैंने सन् 1972 में पश्चिमी बर्लिन में एक जगह एक लौ जलती हुई देखी, जैसी दिल्ली में इण्डिया गेट पर जवान ज्योति जलती है। वह भी शायद उनके शहीदों का स्मारक है। शहीदों को श्रद्धांजलि देने के लिए उन्होंने जला रखी है। मैंने जानना चाहा कि यह प्रज्वलित अग्नि किस बात का प्रतीक है? वहाँ लगी शिला पर लिखा था कि यह अग्नि हमारे संकल्प का प्रतीक है कि हम किसी दिन पूर्वी तथा पश्चिमी बर्लिन को मिलाकर एक करेंगे। तब इस बात की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि इतनी मजबूत दीवार कभी गिरेगी, परन्तु उनका संकल्प दृढ़ था, उनकी यज्ञाग्नि धधक रही थी। उसका परिणाम है कि जो बात उस समय सम्भव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दिखाई नहीं देती थी, बाद में सत्य सिद्ध हुई है। धधकती अग्नि में ही आहुति देने का आनन्द है।

यज्ञ में एक ब्रह्मा होता है। ब्रह्मा अपने घर से सामग्री लेकर नहीं आया, घी लेकर नहीं आया, उसने यज्ञशाला को धोया नहीं, आसन को बिछाया नहीं, वह आहुति नहीं दे रहा, तो भी उसे सर्वाधिक सम्मान दिया जाता है। उस व्यक्ति के जिम्मे एक काम है। वह बड़ी तीखी नजर के साथ यज्ञ पर बैठे प्रत्येक व्यक्ति को देख रहा है। वह इस बात पर ध्यान देता है कि कौन अपना काम ठीक कर रहा है ? क्या मन्त्रपाठ ठीक हो रहा है ? सही समय पर आहुति दी जा रही है या नहीं ? यज्ञ के सिद्धान्तों एवं नियमों की अवहेलना तो नहीं हो रही ? यज्ञ तब तक पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक यज्ञ का कोई ब्रह्मा न हो।

हमारे गाँव का जीवन भी एक सात्विक यज्ञ था। चाहे किसी बहुत कुशल वास्तुविद् (आर्किटेक्ट) से तो गाँव में घर नहीं बनवाए जाते थे, परन्तु जहाँ कुछ गलियाँ आकर मिलती थीं, वहाँ कोई चौपाल होती थी। यदि चौपाल न भी होती तो चारपाई डाले कोई बुजुर्ग एक लाठी पास रखे वहाँ बैठा रहता था। जब मैं गाँव के स्कूल में पढ़ता था, तो इसका रहस्य समझ नहीं पाया था कि क्यों वहाँ बैठता है वह बुजुर्ग ? वह बुजुर्ग एक-एक बात देखता था। कोई बच्ची चली जा रही है। जैसे चलना चाहिए वैसे नहीं चल रही तो वह बुजुर्ग उसे झिड़क देता था। कोई ऐसा-वैसा आदमी गाँव में प्रवेश करना चाहता था, तो वह उसे पूछता था, रोकता था। गली में कोई बच्चा खेल रहा है। अगर वह गाली-गलौच करता था तो उसे थप्पड़ लगाता था, उसे रोकता था। जब वह बच्चा घर जाकर कहता – माँ! वह जो बाबा गली में बैठे हैं चारपाई पर, उसने मुझे थप्पड़ मारा, तो माँ एक और थप्पड़ मारकर कहती थी – 'तूने किसी को गाली दी होगी। नहीं तो वह बुजुर्ग, वह गाँव का सबसे सम्मानित आदमी, तुम्हें कुछ क्यों कहता ?' गाँव के जीवन का जो यज्ञ हो रहा था, उसका ब्रह्मा वह बैठा हुआ बुजुर्ग है। जब तक यह प्रथा रही, जब तक परिवार में, गाँव में, प्रान्त, राष्ट्र और संसार में कोई व्यक्ति ब्रह्मा के रूप में प्रतिष्ठित था तो सर्वत्र कल्याण की भावना रहती थी। जब से यह सिलसिला टूटा, आदमी स्वच्छन्द हो गया है, न कोई जीवन मूल्य रहे, न एक दूसरे का मान और सम्मान रहा। जिन लोगों ने राष्ट्रपति और राज्यपाल के पद की कल्पना की थी, जाने क्यों की ? परन्तु मैं ऐसा सोचता हूँ कि राष्ट्र का एक यज्ञ है। प्रधानमन्त्री या मुख्यमन्त्री उस यज्ञ के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यजमान हैं। वे राष्ट्र निर्माण का संकल्प लेकर चले हैं, परन्तु उस यज्ञ का कोई ब्रह्मा भी होना चाहिए। वह ब्रह्मा है राज्यपाल या राष्ट्रपति। ब्रह्मा सावधानी के साथ चुनिए। चुन लेने के पश्चात् ब्रह्मा की अवहेलना मत कीजिए; नहीं तो सारा ढांचा चरमरा जाएगा।

जैसे यजमान हर व्यक्ति नहीं बन सकता, उसी तरह प्रत्येक व्यक्ति ब्रह्मा भी नहीं बन सकता। हर आदमी तो समिधा भी नहीं हो सकता। आज के आदमी का रूप देखकर आश्चर्य होता है। एक बार कुछ पशु-पक्षी इकट्ठे हुए और भगवान् से शिकायत करने लगे। गिरगिट ने कहा – 'मुझे बहुत बदनाम कर रखा है कि मैं रंग बदलता हूँ, पर उतने तो नहीं बदलता जितने मनुष्य बदलता है। कहावत मेरे नाम पर क्यों है ? आदमी की तरह रंग बदलता है– यह कहावत क्यों नहीं ?' पास बैठा था एक बगुला। उसने कहा – 'तू तो इतनी बात पर ही दुखी हो गया। मैं तुझसे भी ज्यादा दुखी हूँ।' पूछा – तुम्हारा क्या बिगड़ गया ? कहने लगा – 'मेरी सफेद चादर देखकर आदमी ने सफेद कपड़े पहन लिए, पर उसका भीतर तो काला रहा। मैं तो फिर भी एक पाँव पर खड़े होकर कुछ साधना करता हूँ, तपस्या करता हूँ। जितना मेरा पेट माँगता है, उतना ही किसी को खाता हूँ। यह तो मुझसे अधिक दूसरों के प्राण पी रहा है और उसके बाद कहा बगुला भक्त जाता है। आदमी जैसा भक्त कहकर क्यों नहीं पुकारा जाता ?' साँप बोला – 'तुम्हारा वह हाल तो नहीं जो मेरा है। मैं तो जहाँ-कहीं मिल जाता हूँ, आदमी मुझे मारना चाहता है। मेरा कसूर क्या है ? मैं सिर्फ उसे डसता हूँ जो मेरे सिर पर पाँव रखता है, मुझे कुचलना चाहता है। पर कभी आदमी ने अपने रूप को देखा। पड़ौस में रहने वाले आदमी ने भले उसका कुछ नहीं बिगाड़ा, तो भी यह उसे डस लेना चाहता है। जहरीला यह अधिक है, बदनाम मुझे किया जाता है।' उल्लू ने कहा – ''मेरी तो और भी बुरी हालत है। मैं एकान्तवासी हूँ। उजाड़ पसन्द है मुझे। वहाँ बैठा रहता हूँ। मैंने कोई बस्ती आज तक नहीं उजाड़ी। मैंने किसका घर उजाड़ा है ? किन्हीं दो के बीच लड़ाई नहीं करवाई । कोई नगर नष्ट नहीं किया, कोई देश नष्ट नहीं किया; परन्तु आदमी उल्लू-उल्लू कहकर मेरा उपहास करता है। धरती पर जितनी बस्तियाँ उजड़ी हैं, सब आदमी ने उजाड़ीं हैं। मैंने नहीं उजाड़ीं। हिरोशिमा और नागासाकी पर बम मैंने नहीं फेंका। बम तो इसने फेंका है, बदनाम मुझे किया जा रहा है।'' लगता है इनका रोना सच्चा है। ऐसा व्यक्ति न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
129451 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय R 15.3 राम-य


यजमान बन सकता है, न समिधा बन सकती है, न ब्रह्मा बन सकता है।

सब कुछ हो लिया, आहुतियाँ दे लीं, उसमें से जो प्यारा धूम निकलता है, यजमान उसे बंद करके अपने पास सीमित नहीं रख सकता। यज्ञशाला में आठ खम्भे होते हैं, उनके ऊपर एक छत होती है, चारों ओर से खुला होता है। जो व्यक्ति यज्ञ करता है, वह खुले में करता है। यज्ञ की समिधा से निकला हुआ धूम हमें जीवन देता है, परन्तु यदि बंद कमरे में बैठकर यज्ञ किया जाए तो वही धुआँ मौत का कारण बन सकता है। यदि यजमान यह सोचे कि यह सब कुछ किया तो उसने है, सामग्री उसकी है, परिश्रम उसका है, लाभ किसी दूसरे व्यक्ति को क्यों दे? तो काम नहीं चलेगा। इसी तरह चाहे किसी ने व्यापार किया, चाहे कोई संस्था चलाई, कोई स्कूल चलाया, कोई कारखाना चलाया, अगर उसके धन को अकेला खा लेना चाहे तो वह यज्ञमयी भावना नहीं है। यज्ञमयी भावना तो 'इदन्न मम' है, यह मेरे लिए नहीं है, राष्ट्र के लिए है, सबके लिए है, किसी अकेले के लिए नहीं।

यह सब कुछ कर लेने के बाद भी कुछ बच जाता है जिसे यज्ञशेष कहते हैं। क्या आपने ऐसा कोई व्यवस्थापक देखा है जो यज्ञ कर लेने के बाद थोड़ा-सा यज्ञशेष बाँट दे और जो बाकी बचे उसे अपने साथ ले जाए? ऐसे व्यक्ति की सब निन्दा करेंगे; उसने नियम जो तोड़ा है। मैंने छोटा-सा यज्ञ किया, किसी दफ्तर में बैठकर कोई काम किया, जीवन भर पैसा कमाया। खर्चने के बाद जो कुछ बचा है, क्या उस बैंक बैलेन्स (यज्ञ शेष) पर मेरा अकेले का हक है? जो थोड़ा-सा है उसे तो बांटना चाहता हूँ, पर जो बाकी है उसे बाँटना नहीं चाहता। उसे संग्रह कर अपने पास रखना चाहता हूँ। चाहे ईरान का शाह हो और चाहे रोमानिया में अपने-आपको साम्यवादी कहने वाला कोई नेता हो, जो यज्ञशेष को अपने पास रखने का प्रयत्न करता है, उसका यज्ञ सफल नहीं होता, विफल होता है। उसका परिणाम उसके लिए घातक होता है। जब शाह ईरान गए थे तो आँखों से बहते अश्रु ईरान की मिट्टी को गीला कर रहे थे। शाह ने गीली मिट्टी उठाकर मुट्ठी में ली, फिर जहाज पर चढ़ने से पहले उस मिट्टी को अपनी जेब में डाल लिया। यज्ञशेष बांट देता, संग्रह न करता, तो यूँ वहाँ की मिट्टी को न तरसता।

यज्ञ करते समय बार-बार मन्त्र पाठ करते हुए कहते हैं— स्वाहा। स्वामी समर्पणानन्द ने इसका बहुत प्यारा अर्थ किया है। स्वामी जी स्वाहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(सु+आह) का अर्थ करते हैं – 'ठीक हो गया।' हर कर्म करने के बाद यह आवाज़ निकलनी चाहिए। यह आवाज़ निकलती है तब तो यज्ञ है, यदि नहीं निकलती है तो यज्ञ नहीं है। अपने जीवन में यज्ञ किया था ऋषिवर दयानन्द ने। आज उसकी पूर्णाहुति देने लगे हैं। अजमेर में पड़े हैं। रोम-रोम से विष फूटकर निकल रहा है। बहुत पीड़ा है, परन्तु उनके चेहरे पर मधुर मुस्कान है। मुखारविन्द से निकलता है– 'अहा! तैंने अच्छी लीला की, तेरी इच्छा पूर्ण हो।' ऋषि कह रहे हैं– ठीक हो गया। जितना मौका मिला था, ठीक कर दिया। ऋषि का रोम-रोम स्वाहा कह रहा है। जैसा ज्ञान आत्मा में है, वैसा ही वाणी से बोल रहे हैं।[6]

स्वामी समर्पणानन्द ने एक और बहुत प्यारी बात कही। जब हम पूर्णाहुति देते हैं तो '**ओम् सर्वं वै पूर्णꣳस्वाहा**' बोलते हैं। इसका अर्थ करते हुए स्वामीजी कहते हैं– ''कोई कार्य ठीक हुआ तब जानो, जब वह पूर्ण हो जावे।''[7] बीच में छोटी-मोटी सफलता मिल जाए, तो आराम से नहीं बैठना चाहिए। अभी लम्बा रास्ता पड़ा है।

अपने से बड़ों को देव समान समझकर उनकी पूजा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को सफल और सुखी बनाए तथा विश्व कल्याण हेतु बराबर वालों से संगतिकरण के द्वारा कुछ ग्रहण करता हुआ छोटों के लिए दान देता चला जाए, यही सर्वोत्तम है। इसी के द्वारा विश्व का कल्याण सम्भव है। यही विचारधारा शान्ति और सुख के सागर में हिलोरें उत्पन्न कर सकती है। आपस का मेल, समन्वय, सबका यथायोग्य सम्मान, सबका पूरी लग्न से कर्त्तव्यपालन, सभी को फूलने-फलने का अवसर देते हुए परस्पर की उन्नति में सहयोग, स्नेह में ओत-प्रोत होकर मिलना तथा मिलकर सर्वहित के मंगल कार्य करना ही यज्ञ है। स्वयं उन्नति करके दूसरों को उन्नत होने में सहयोग देने वाला, विश्व को खिलाकर स्वयं खाने वाला व्यक्ति यज्ञ ही कर रहा है।

अग्निहोत्र इसी विशाल यज्ञ का एक मुख्य अंग तथा प्रतीक है। यह वैसा ही नित्यकर्म है जैसा वेद का स्वाध्याय और सन्ध्योपासना। हम अग्निहोत्र करते हुए विश्व यज्ञ में अपना भाग समर्पित कर रहे हैं। इसके मन्त्र ऐसे पवित्र, समन्वय, त्याग एवं बलिदान के भाव मानव हृदय में उदय करते हैं कि उनके द्वारा सर्वमंगल अवश्यम्भावी है। अग्निहोत्र में जो समर्पण की तत्परता, निज कर्त्तव्य में लग्न और आत्मोत्सर्ग की अनुपम शिक्षा मिलती है, उसी से मानव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का अभ्युदय और कल्याण साथ-साथ होता है। अग्निहोत्र करने वाला व्यक्ति कर्म स्वयं करता है परन्तु फल बांटकर खाता है। **केवलाघो भवति केवलादी** – अकेला खानेवाला पाप खाता है– का सही अर्थ वही समझता है। **तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः** में उसका विश्वास है। इसीलिए वह राष्ट्र का मेरुदण्ड है। यज्ञमयी भावना से भरकर **इदमग्नये- इदन्न मम** कहने वाला व्यक्ति ही राष्ट्र पर आए संकट के समय भामाशाह का रूप धारण करके अपना सर्वस्व न्योछावर करता है। ऐसी यज्ञमयी भावना वाले व्यक्ति का ही शान्तिपाठ का मन्त्रोच्चारण सार्थक है। वही कह सकता है– हे परमपिता परमात्मन्! द्युलोक में, अन्तरिक्ष में, पृथ्वी में, जल में, वायु में, औषधियों में ... सर्वत्र शान्ति हो। शान्ति में भी शान्ति हो। तभी मुझे भी शान्ति मिलेगी, देव।

## संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, द्वादश समुल्लास

2. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश-स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश; ''यज्ञ उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार, यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जोकि पदार्थविद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभ गुणों का दान,अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, औषधि की पवित्रता करके सब-जीवों को सुख पहुँचाना है, उसको उत्तम समझता हूँ।''

3. ऋषि दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, सामान्यप्रकरण

4. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास

5. भगवानदास माहौर, सदाशिवराव मलकापुरकर, शिव वर्मा, यश की धरोहर, आत्माराम एंड संज़, दिल्ली, 1991, पृष्ठ 14-15

6. ऋषि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में लिखते हैं, ''स्वाहा शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से बोले विपरीत नहीं''

7. स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती, पञ्चयज्ञप्रकाश, समर्पण-शोध संस्थान, साहिबाबाद, गाजियाबाद (1989), पृष्ठ 68; यज्ञ प्रेमियों के लिए स्वामी दीक्षानन्द सरस्वती कृत अग्निहोत्र सर्वस्व(समर्पण शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित) पठनीय सामग्री प्रस्तुत करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# प्रक्रिया

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने सन्ध्योपसनादि पञ्चमहायज्ञों – ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ (अग्निहोत्र), पितृयज्ञ, भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव यज्ञ) और नृयज्ञ (अतिथि यज्ञ) का शास्त्र सम्मत विधान किया है। ये कर्म अपने शरीर, मन और आत्मा को शान्त और शुद्ध करके चित्त लगाकर विधिपूर्वक करने चाहिएँ। सभी मंगल कार्यों से पूर्व अपने तथा पराये के कल्याण के लिए यज्ञ द्वारा ईश्वरोपसना की जानी चाहिए। अग्निहोत्र से ईश्वराज्ञा का पालन, पवन और वर्षा जल की शुद्धि, सब पदार्थों की अत्यन्त उत्तमता और जीवों में सुख होता है। अतः अग्निहोत्र करना अत्यन्त उचित माना गया है। अग्निहोत्र के लिए शास्त्रों में यज्ञशाला, यज्ञकुण्ड, यज्ञपात्र, हव्य द्रव्य तथा यज्ञ करने की विधि का विस्तृत विवरण मिलता है। संक्षेप में आवश्यक जानकारी इस प्रकार है–

**यज्ञशाला**

अग्निहोत्र के लिए यज्ञमण्डप का निर्माण किया जाता है। महर्षि दयानन्द के अनुसार "यह (यज्ञशाला) अधिक से अधिक १६ सोलह हाथ समचौरस चौकोण और न्यून से न्यून ८ आठ हाथ की हो। यदि भूमि अशुद्ध हो तो दो-दो हाथ यज्ञशाला की और जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथिवी खोद अशुद्ध निकालकर उसमें शुद्ध मट्टी भरें। यदि १६ सोलह हाथ की समचौरस हो तो चारों ओर २० बीस खम्भे और जो ८ आठ हाथ की हो तो १२ बारह खम्भे लगाकर उन पर छाया करें। वह छाया की छत वेदी की मेखला से १० दस हाथ ऊँची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों दिशा में ४ चार द्वार रक्खें।"[1]

**यज्ञकुण्ड**

यज्ञकुण्ड सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा व मिट्टी का बनवाया जा सकता है।[2] यह केवल ऊपर से खुला रहता है। इसका परिमाण आहुतियों की संख्या पर निर्भर करता है।

सत्यार्थप्रकाश में प्रतिदिन के यज्ञ के लिए यज्ञकुण्ड का परिमाण इस प्रकार लिखा है – "एक किसी धातु या मट्टी की ऊपर १२ वा १६ अंगुल चौकोर, उतनी ही गहिरा और नीचे ३ वा ४ अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनावे अर्थात् ऊपर जितनी चौड़ी हो उसकी चतुर्थांश नीचे चौड़ी रहे।"[3] बृहद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यज्ञों के लिए यज्ञकुण्डों के परिमाण की चर्चा महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कारविधि के सामान्य प्रकरण में की है।

यज्ञकुण्ड का यह आकार पूर्णतया वैज्ञानिक है। इस प्रकार की बनावट का कुण्ड कम लकड़ी जलाने पर भी अधिक गर्मी पैदा करता है। इसमें समिधाओं को इस प्रकार रखा जाता है कि वायु का प्रवेश न तो एकदम अधिक और न ही बहुत कम हो जाए। यज्ञकुण्ड की बनावट तथा समिधाओं के चयन करने की विधि हवन के लिए वांछित एवं आवश्यक गर्मी पैदा कर देती है। यज्ञकुण्ड के नीचे के भाग में लगभग 300° सेल्सियस तापांश होता है। ज्वालाओं के ऊपर तापांश 1300° सेल्सियस तक पहुँच जाता है। शेष भाग में भिन्न-भिन्न स्थान पर अलग-अलग तापांश होता है। अग्नि के कुछ धीमी हो जाने पर तापांश 250° से 600° सेल्सियस तक रह जाता है। हवन के लिए गर्मी की यह मात्रा भी पर्याप्त है। कार्य प्रारम्भ होने के पश्चात् शेष सभी रासायनिक क्रियाएँ इस तापांश पर सुविधापूर्वक पूर्ण हो जाती हैं।

**यज्ञपात्र**

यज्ञ तथा अन्य धार्मिक कृत्यों के लिए साधारणतया सोना, चाँदी, तांबा और लकड़ी से बने पात्र ही प्रयोग में लाए जाते हैं। सोना और चाँदी पर अन्य पदार्थों तथा वायु का प्रभाव नहीं होता, परन्तु ये धातुएँ महँगी होने के कारण तांबे के पात्र ही अधिक प्रयोग किए जाते है। तांबे के पात्रों का एक लाभ यह भी है कि इसमें कृमिनाशक गुण होता है, उदाहरणार्थ — हैजा आदि के दिनों में पानी में इन व्याधियों के रोगाणु उत्पन्न हो जाते हैं, किन्तु यदि इस जल को एक दिन पूर्व ताम्र-पात्र में भरकर रख दिया जाए तो रोगाणु मर जाते हैं। फिर यह पानी कोई व्याधि उत्पन्न नहीं कर सकता। अमरीका के प्रसिद्ध डॉक्टर मुनेरने ने अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया था कि तांबे के पतरे और बर्तन आदि पर किसी भी रोग के कीटाणु जीवित नहीं रह सकते। ठठेरों को मलेरिया, हैजा आदि संक्रामक रोग शायद ही कभी होते हों।

यज्ञीय पात्रों में आज्यस्थाली (घृत रखने का पात्र), प्रोक्षणीपात्र (हाथ धोने के जल के लिए), शाकल्यपात्र (सामग्री आदि के लिए), आचमनी, चमचा, चिमटा आदि मुख्य हैं। सभी पात्रों को प्रतिदिन साफ करना आवश्यक है।

हवन करने के समय यज्ञवेदी, यज्ञसामग्री और पात्रों को पूर्णतया साफ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



और शुद्ध कर लिया जाता है। फिर अग्निहोत्र करने वाले यज्ञमण्डप में यज्ञकुण्ड के चहुँ ओर आसन ग्रहण करते हैं। सर्वप्रथम आचमन और अंग स्पर्श करके ईश्वर स्तुति-प्रार्थनोपासना मन्त्रों का गायन करने के पश्चात् यज्ञकुण्ड में समिधाओं का चयन किया जाता है। फिर कपूर जलाकर अग्नि प्रज्वलित की जाती है। घृत में भिगोई हुई तीन समिधाएँ यज्ञकुण्ड में रखकर घृत की पाँच आहुतियाँ दी जाती हैं। इससे अग्नि सुविधा से जलती रहती है। तदुपरान्त यज्ञकुण्ड के चारों ओर जल छिड़का जाता है। फिर घृत और सामग्री की आहुतियाँ देकर इस पवित्र कार्य को सम्पन्न किया जाता है। प्रत्येक क्रिया अथवा आहुति से पूर्व निर्धारित मन्त्र का मधुर स्वर से यथावत् पाठ किया जाता है। यदि यजमान मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित मन्त्रोच्चारण करता है और यजमान शेष यज्ञकर्म। परन्तु यज्ञ करते समय उपस्थित कर्म के बिना दूसरा कर्म वा दूसरी बात करने का निषेध है।

ऋषि दयानन्द द्वारा सुझाई गई यज्ञ प्रक्रिया अन्धविश्वासों एवं आडम्बरों से रहित तथा जटिलताओं से मुक्त है।

**संदर्भ एवं टिप्पणियाँ**

1. ऋषि दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, सामान्य प्रकरणम्; तुलना-पारस्कर गृह्यसूत्र क. 4, का. 1 का गदाधर भाष्य

2. पण्डित युधिष्ठर मीमांसक ने भूमि में वेदी खोदने का तर्क सम्मत निषेध किया है एवं ऋषि दयानन्द के कथन का भी स्पष्टीकरण किया है (द्रष्टव्यः युधिष्ठिर मीमांसक, मेरी दृष्टि में स्वामी दयानन्द और उनका कार्य, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, प्रथम-संस्करण, सम्वत् 2048 वि., पृष्ठ 8-9)।

3. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास

नोटः ऋषि दयानन्द ने यत्र-तत्र उस समय प्रचलित मन, सेर, छटांक, मासा, रत्ती ... आदि का उल्लेख किया है। उनका परिमाण इस प्रकार है : 1 मन = 40 सेर, 1 सेर = 16 छटांक, 1 छटांक = 5 तोला, 1 तोला = 12 मासा, 1 मासा = 8 रत्ती, एक सेर = 960 ग्राम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# समिधा

यज्ञाग्नि प्रज्वलित रखने के लिए प्रयोग किए जाने वाले काष्ठ को समिधा अथवा इध्म कहते हैं। प्रत्येक लकड़ी की समिधा नहीं बनाई जा सकती। यज्ञ में कुछ विशेष लकड़ियाँ ही प्रयुक्त होती हैं। अग्निहोत्र में प्रयोग की जाने वाली समिधा के कुछ गुण निम्नलिखित हैं—

1. लकड़ी सुविधापूर्वक जलने वाली हो। छालयुक्त लकड़ी अधिक गुणकारी होती है। आह्निक सूत्रावली में त्वचारहित समिधा का निषेध किया गया है—
**न विनिर्मुक्तत्वचा चैव।**
2. लकड़ी मलिन, दूषित एवं कीड़ा लगी हुई न हो।
3. जलने पर लकड़ी दुर्गन्ध और अपना धुआँ न दे।
4. यदि लकड़ी जलकर राख हो जाए तो अधिक ठीक है। कोयला बनाने वाली लकड़ी कम उपयोगी है।

शतपथ ब्राह्मण (1, 3, 3, 20) में समिधा के लिए निम्नलिखित वृक्षों का विधान किया गया है—

**यदि पालाशान्न विन्देत्। अथोअपि वैकंकताः स्युः।**
**यदि वैकंकतान्न विन्देदथोअपि कार्ष्मर्यमयाः स्युः।**
**यदि कार्ष्मर्यमयान्न विन्देदथोअपि बैल्वाः स्युः।**
**अथो खादिरा अथो औदुम्बराअएते हि वृक्षाः**
**यज्ञियास्तस्मादेतेषां वृक्षाणां भवन्ति।**

आह्निक सूत्रावलि में ढाक(पलाश, खंकरा), फल्गु, वट, पीपल, विकंकत (वंज), गूलर, चन्दन, सरल, देवदारु, शाल, खैर आदि का विधान किया है—

**पलाश-फल्गु-न्यग्रोध-प्लक्षाश्वत्थ विकंकताः।**
**उदुम्बरस्तथा बिल्वश्चन्दनो यज्ञियाश्च मे।।**
**सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा।**
**समिदर्थे प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षाः विशेषतः॥**

वायुपुराण में ढाक, काकप्रिय, बड़, पिल्खन, पीपल, विकंकत, गूलर, बेल, चन्दन, पीतदारु, शाल, खैर आदि को यज्ञोपयोगी वृक्ष माना है।

**ग्राह्याः कण्टकिनोऽप्येवं यज्ञिया एव केचन।**
**पूजिताः समिदर्थेषु पितृणां वचनं तथा।।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ऋषि दयानन्द सरस्वती ने यज्ञ के लिए पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि की समिधा का विधान किया है।[1] चन्दन, पलाश, आम आदि की लकड़ी उत्तम मानी गई है। इंग्लैंड में शाहबलूत(oak), अफगानिस्तान और बिलोचिस्तान में बादाम की लकड़ी, जर्मनी में लैवेण्डर तथा भारत और इटली में युकेलिप्टस की लकड़ी यज्ञ समिधा के रूप में प्रयुक्त हो सकती है।

लकड़ी का मुख्य भाग सेलुलोस तथा लिग्नोसेलुलोस होता है। इनके अतिरिक्त लकड़ी में कुछ गोंद, राल, वाष्पशील तेल तथा अम्ल, वसीय अम्ल और अन्य अकार्बनिक पदार्थ भी होते हैं। बड़, गूलर तथा पीपल की छाल में क्रमश: 10, 9, 14 तथा 3.8 प्रतिशत टेनिन होता है।

लकड़ी तथा कोयले की प्रतिशत रासायनिक बनावट निम्नलिखित है—

| | लकड़ी | कोयला |
|---|---|---|
| कार्बन | 48–51 | 82 |
| हाईड्रोजन | 6 | 5 |
| ऑक्सीजन | 43 | 12 |
| नाइट्रोजन | 0.04–0.1 | 1 |

इस तालिका से स्पष्ट है कि कोयले में लकड़ी की अपेक्षा कार्बन की मात्रा अधिक है। फिर भी हवन में अग्नि प्रज्वलित रखने के लिए कोयले का प्रयोग नहीं किया जाता क्योंकि यह जलते समय कार्बन मोनोऑक्साइड नामक ज़हरीली गैस उत्पन्न करता है। यज्ञ में अग्नि जलाने के लिए आज्य के रूप में तेलों का प्रयोग भी नहीं किया जाता क्योंकि ये जलने पर दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। अत: शास्त्रकारों ने यज्ञ में समिधा तथा आज्य के रूप में लकड़ी एवं घृत के ग्रहण का ही विधान किया है।

रचना भेद के कारण लकड़ियों के गुणों में भी भेद होता है। कुछ मुख्य लकड़ियों के औषध सम्बन्धी गुण (मुख्यतया भावप्रकाश[2] तथा सुश्रुत[3, 4] के आधार पर) निम्नलिखित हैं—

**ढाक (पलाश)** *Butea frondosa* *

ढाक सुविधा से जलती है। अग्निदीपक और वीर्यवर्द्धक है। गुदा के रोग, संग्रहणी तथा कृमिनाशक है। भावप्रकाश के अनुसार ढाक के बीजों को

*क्रमश: हिन्दी, संस्कृत तथा लेटिन नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शहद में मिलाकर आँत के कीड़े निकालने की औषधी बनाई जाती है। इसके पत्ते फोड़े-फुन्सियों को नष्ट करने के लिए प्रयोग किए जाते है।

**पीपल ( पिप्पल, बौधिद्रुम )** *Ficus religiosa*

पीपल को पवित्र माना जाता है। यह दाह, कफ, पित्त, विष तथा रक्तविकार नाशक है। इसके बीजों का चूर्ण श्वास रोग में लाभदायक है।

**बड़ ( वट )** *Ficus bengalensis*

बड़ शीतल, भारी तथा कसैला होता है। कफ, पित्त, वमन एवं ज्वर में लाभदायक है। कान्ति बढ़ाता है। इसका दूध अत्यन्त बलवर्द्धक है। इसके दूध को बताशे में रखकर सेवन करने से प्रमेह रोग दूर हो जाता है।

**गूलर ( उदुम्बर, हेमदुग्धक )** *Ficus glomerata*

गूलर कफ, पित्त तथा रक्तविकार को ठीक करता है। हड्डी को जोड़ने वाला तथा वर्ण को उत्तम करने वाला है।

**आम ( आम्र )** *Mangifera indica*

आम का बौर शीतल तथा रुचिकारक है। यह कफ, पित्त, रक्तविकार तथा प्रमेह का नाश करता है। इसके पत्तों का धुआँ कुक्कुर खाँसी को नष्ट करता है। यूनानी मतानुसार आम की छाल रक्तस्राव को बंद करने वाली, वमन और अतिसार-नाशक है।

**चन्दन ( चन्दन )** *Santalum album*

सर्वोत्तम चन्दन देखने में ऊपर से सफेद, गाँठदार, काटने में लाल, पीसने में पीला तथा स्वाद में कड़वा होता है। यह कफ, तृषा, पित्त, रुधिरविकार और दाहनाशक है। चन्दन की लकड़ी के बने सन्दूकों में रखी हुई वस्तुओं को कीड़ा नहीं लगता। यज्ञ में प्रायः इसका चूरा ही डाला जाता है। सफेद चन्दन का तेल सुजाक (आतशक) में लाभदायक है।

**अशोक ( अशोक )** *Sarca indica*

अशोक शीतल, कान्तिवर्द्धक, मलरोधक, हड्डी को जोड़ने वाला तथा कृंमिनाशक है। शूल, उदर रोग, पित्त, श्रम, दाह, तृषा, अपच, विष और रुधिर विकारों को दूर करता है। बसु और कीर्तिकर[5] ने इसकी छाल को कृमि, तृषा और ज्वरनाशक, अपच को दूर करने वाली, शूल और बवासीर में लाभदायक माना है

अतः यज्ञ में प्रयोग की जाने वाली लकड़ियाँ अत्यन्त गुणशाली हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



विभिन्न रोगों का नाश करती हैं। इसलिए जहाँ लकड़ी जलने पर गर्मी उत्पन्न करती है, वहाँ कई लाभदायक पदार्थ भी बनाती है। इनकी रासायनिक बनावट की चर्चा कीर्तिकर तथा बसु[5], डिमोक[6] व चोपड़ा[7] ने अपने ग्रन्थों में की है।

**संदर्भ एवं टिप्पणियाँ**

1. ऋषि दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, सामान्यप्रकरण; तुलना– पारस्कार गृह्यसूत्र, प्रथम का. प्र. का गदाधरभाष्य

2. भावप्रकाश निघण्टु (श्री भावमिश्र कृत), टीकाकार विश्वनाथ द्विवेदी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली (1959)

3. Bhaskar Govind Ghanekar, Sushruta Samhita with Hindi Commentary, Vol.1, (Sutra and Nidansthan), Meharchand Lachhmandas, Lahore (1936)

4. सुश्रुत-संहिता, टीकाकार शम्भुनाथ पाण्डेय, श्री सरस्वती पुस्तकालय, चौक कानपुर (1952)

5. K.R. Kirtikar and B.D.Basu, Indian Medicinal Plants, Vol.I-II, Bishen Singh Mahendra Pal Singh, New Connaught Place, Dehradun (1984)

6. W.Dymock, C.G.H. Warden and D.Hooper, Pharmacographia Indica, Vol.I-III, Thacker, Spink & Co., Calcutta (1890-91)

7. R.N. Chopra, I.C.Chopra, K.L. Handa and L.D. Kapur, Indigenous Drugs of India, Dhur and Sons, Calcutta(1958)

नोट : इस पुस्तक में जो वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्द प्रयुक्त हुए हैं, उनका आधार 'बृहत् पारिभाषिक शब्द संग्रह, विज्ञान: खण्ड 1 तथा 2', केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, भारत सरकार (1973) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# सामग्री

शतपथब्राह्मण (11, 3, 1, 2-4) में महाराज जनक ऋषि याज्ञवल्क्य से पूछते हैं—

हे याज्ञवल्क्य! क्या तुम अग्निहोत्र को जानते हो?

हाँ, जानता हूँ, राजन्!

क्या है?

बस, दूध ही है।

यदि दूध न हो तो किसकी आहुति दोगे?

धान और जौ की।

यदि धान और जौ भी न हो तो ?

जो भी अन्य औषधियाँ हों।

यदि अन्य औषधियाँ भी न हों तो?

जंगली औषधियों की।

यदि जंगली औषधियाँ न हों तो?

वनस्पति की।

यदि वनस्पति न हो तो?

जल की।

यदि जल न हो तो?

राजन्! कुछ भी न हो, तो भी यज्ञ करना ही चाहिए। श्रद्धा में सत्य का हवन करें।

इस रोचक संवाद में अग्निहोत्र के लिए आवश्यक सभी हव्य पदार्थों की गणना ऋषि याज्ञवल्क्य ने कर दी है। सब वस्तुएँ न मिलें तो न सही; जो मिले जितनी मिले, उसी से यज्ञ करें। यही भाव व्यक्त करते हुए ऋग्वेद (8, 102, 19-21) में भक्त भगवान से कहता है— "हे देव! न मेरे पास गऊ है, न लकड़ी काटने के लिए कुल्हाड़ा। फिर भी यज्ञ तो करूँगा ही। जैसी-कैसी लकड़ियाँ लाया हूँ, उन्हें ही स्वीकार करो। मधुमक्षिका आदि का यह जूठन ही मेरा घृत है, देव।"

यज्ञ-सामग्री की चर्चा वेद में कई स्थलों पर आई है। यथा —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन॥ यजु. 3, 1

'समिधाओं से यज्ञाग्नि प्रज्वलित करके उसे घृत से प्रबुद्ध करो। प्रदीप्त अग्नि में उत्तमोत्तम हवि की आहुतियाँ दो।'

घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथाम्॥ यजु. 6, 16

'यज्ञ के द्वारा घृत आदि से पृथिवी को भर दो'

घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम्॥ यजु. 5, 28

'हे दम्पति! तुम यज्ञ के द्वारा द्युलोक और पृथिवी को घृताहुति से पूर्ण कर दो'

वेद में यजमानों के लिए विधान किया गया है—

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हुविः।। ऋ. 10, 14, 13

'सोमलतादि औषधियों को खींचो (निचोड़ो)और फिर हवनीय द्रव्यों को अग्नि में डालो।'

यमाम मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन।। ऋ. 10, 14, 15

'हे यज्ञ करने वालो! बहुत मीठे हवन करने योग्य पदार्थों से अग्निहोत्र करो।'

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

यजु. 3, 60

इस मन्त्र में हविर्द्रव्यों की चारों श्रेणियों – सुगन्धित, पुष्टिकारक, रोगनाशक तथा मिष्ठ का संकेत है।

ऋषि दयानन्द ने भी यज्ञ-सामग्री के लिए निम्नलिखित चार प्रकार की वस्तुओं का विधान संस्कारविधि में किया है –

"(प्रथम – सुगन्धित) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल,जावित्री आदि।

(द्वितीय – पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द आदि।

(तृतीय – मिष्ट) शक्कर, सहत (शहद), छुहारे, दाख आदि।

(चतुर्थ – रोगनाशक) सोमलता अर्थात् गिलोय आदि औषधियाँ"[1]

सब द्रव्य यथावत् शुद्ध कर लेने चाहिएँ। जो वस्तुएँ धोई जा सकें, उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



धोकर, सुखाकर साफ कर लेना चाहिए। सामग्री गली-सड़ी तथा कीड़ा लगी हुई नहीं होनी चाहिए। इसमें पर्याप्त घी मिला लेना चाहिए, जिससे सामग्री का रूखापन तथा तीक्ष्णता दूर हो जाए।

घी को भी भली प्रकार शुद्ध कर लेना चाहिए। महर्षि दयानन्द के अनुसार सुगन्धित एवं सुसंस्कृत घी ही यज्ञ में प्रयोग किया जाना चाहिए:

''घृत को गर्म कर छान लेवे। और एक सेर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर पीस के ... मिलाकर पात्र में रख छोड़ें।''[2]

''घृतादि जोकि उष्ण कर, छान, पूर्वोक्त सुगन्ध्यादि पदार्थ मिलाकर पात्रों में रक्खा हो।''[3क]

''शुद्ध किए हुए सुगन्ध्यादियुक्त घी को तपा के...''[3ख]

''जो घृत गर्म कर, छानकर, सुगन्ध मिलाकर रक्खा हो...''[3ग]

''संस्कृत घी अर्थात् जो गर्म कर, छान जिसमें कस्तूरी आदि सुगन्ध मिलाया हो...।''[3ग]

''...सेर भर घी में रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर, एक-एक मन घी के साथ सेर-सेर भर अगर, तगर और घृत में चन्दन का चूरा भी यथाशक्ति डाल...''[3घ]

यज्ञ के लिए विशेष पाक बनाने का विधान भी है, जैसे कि सेर भर घी के मोहनभोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल, जावित्री, सेर भर मीठा सब डालकर मोहनभोग बनाना। इसी प्रकार अन्य मीठा भात, खीर, खिचड़ी (लवणरहित), मोदक आदि होम के लिए बनाएँ।[1]

एक किलोग्राम सामान्य यज्ञ सामग्री में साधारणतया निम्नलिखित द्रव्य होने चाहिएँ –

हर्मल, तुलसी के बीज (प्रत्येक एक ग्राम), तुलसी के पत्ते (दो ग्राम), नीम के पत्ते, नीम की निम्बोली, खूबकलां, पिस्ता, जावित्री, जायफल, चिरौंजी, चीड़ का बुरादा (प्रत्येक पाँच ग्राम), शतावर, मुनक्का, गाजवान, जंडी के पत्ते, पित्तपापड़ा, पीपल की छाल, आम के पत्ते, यूकेलिप्टस के पत्ते, सौंफ, कपूर,लौंग, चिरायता (प्रत्येक आठ ग्राम), गुलाब, हरड़, बहेड़ा, आँवला, अगर, तगर, कपूरकचरी, मुलहठी, नागरमोथा, असगन्ध, मकोय, इन्द्रजौ, बड़ी इलायची, तालीसपत्र, गोखरू, किशमिश, दालचीनी, नागकेसर, पानड़ी, (प्रत्येक बीस ग्राम), बादाम, सफेद चन्दन का चूरा, छुहारा, जौ, हरे मूँग, उड़द, चावल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बालछड़, कचूर, ब्रह्मी, बनफसाँ नारियल गिरी (प्रत्येक तीस ग्राम), काले तिल, गिलोय तथा गुग्गल (प्रत्येक चालीस ग्राम)। सामग्री में खाँड व घृत पर्याप्त मात्रा में मिला लेना चाहिए।

स्थान, ऋतु एवं अन्य परिस्थितियों के अनुसार यज्ञ-सामग्री के द्रव्यों तथा उनकी मात्रा में परिवर्तन करना चाहिए (द्रष्टव्य परिशिष्ट 1)। यज्ञ से वांछित लाभ की सम्प्राप्ति के लिए हवि-द्रव्यों के गुणों एवं रासायनिक संघटन का ज्ञान आवश्यक है। द्रव्य-गुणों का प्राचीन शास्त्रकारों तथा रासायनिक संघटन का वर्तमान वैज्ञानिकों ने बड़ा विस्तृत विवेचन किया है। कुछ प्रमुख द्रव्यों के गुण इस प्रकार हैं—

**कपूर ( कर्पूर )** *Cinnamomum camphor* *

कपूर वृक्ष की लकड़ी भाप के साथ आसवन क्रिया पर कर्पूर तैल देती है। इस तेल से कपूर बनाया जाता है। सुश्रुत ने कपूर को शीतल, हलका सुगन्धित, तृषा तथा अरुचिनाशक माना है। भावप्रकाश के अनुसार यह वीर्यवर्द्धक, नेत्रों के लिए हितकर, कफ, पित्त, दाह, तृषा, अरुचि एवं दुर्गन्धनाशक है। यूनानियों का विचार है कि कपूर विषैले तथा फैलने वाले फोड़े-फुन्सियों में बहुत लाभ पहुँचाता है। यह क्षत को भरता है, अतः मरहमों में प्रयुक्त होता है। कपूर की धूनी जुकाम में लाभप्रद है।

कैम्फर आयल में कपूर, युजिनॉल, पाइनीन, फेलेण्ड्रीन, सीनिओल, डाइपैन्टीन, सैफ्रैल, टर्पिनिऑल तथा सेस्क्वीटर्पीन होते हैं।[4क]

**घी ( घृत )** *Butyrum depuratum*

सुश्रुत (सूत्रस्थान 45, 96-111) घी को अमृत तुल्य गुणकारी, आयु, स्मरणशक्ति, बुद्धि, ओज, तेज, वीर्य तथा सौन्दर्य को बढ़ाने वाला, अग्निदीपक, नेत्रों के लिए हितकर, ज्वर, पित्त, उदरशूल, मिर्गी, विष और कृमि-नाशक माना है। साँप के काटने पर घी पिलाया जाता है। गोघृत सुँघाने से आधासीसी के दर्द में लाभ होता है। शरीर में पित्त या पित्ती रोग उभरने पर घी गर्म करके पिलाना लाभप्रद है। घी क्षत को भरता है, अतः अनेक मरहमों आदि में प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेद में गाय का घी सर्वोत्तम माना गया है।

घी उच्चतर कार्बाक्सिलिक अम्लों का मिश्रित ट्राइग्लिसराइड है। इसके मुख्य संतृप्त तथा असंतृप्त अम्ल ओलीक, पामिटिक, स्टिएरिक, मिरिस्टिक

---

*क्रमशः हिन्दी, संस्कृत तथा लेटिन नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अम्ल आदि हैं।

**दूध ( दुग्ध ) *Lactus***

दूध पूर्ण आहार है। गाय का दूध सर्वश्रेष्ठ माना गया है। धारोष्ण गोदुग्ध तो अमृत-तुल्य है। दूध वीर्य, आयु, बल तथा बुद्धि को बढ़ाता है। वात व पित्त का नाश करता है। श्रम, अतिसार, बवासीर, तपेदिक, पाण्डुरोग, संग्रहणी, मूत्ररोग, हृदयशूल व मूर्च्छा में लाभदायक है। शरीर, हाथ, पैर और आँखों की जलन को दूर करता है। सुश्रुत (सूत्रस्थान 45, 47-64) में दूध के गुणों की विस्तृत चर्चा की गई है।

गोदुग्ध में 87.2 प्रतिशत पानी, 4.75 प्रतिशत दुग्धशर्करा, 3.90 प्रतिशत दुग्ध-वसा, 3.0 प्रतिशत केसीन, 0.40 प्रतिशत ऐल्बुमेन तथा 0.75 प्रतिशत राख होती है।[5] दूध में विटामिन, ऐमिनो ऐसिड, कई प्रकार के खनिज पदार्थ तथा कुछ धातुएँ भी होती हैं। दूध की प्रोटीन सर्वोत्तम है। यह स्वयं 97 प्रतिशत तक पच जाती है तथा दूसरे पदार्थों की प्रोटीन को भी पचने में सहयोग देती है, उदाहरणार्थ — यदि केवल गेहूँ खाई जाए तो इसकी प्रोटीन 20 प्रतिशत तक पचती है, परन्तु गेहूँ के साथ दूध का प्रयोग करने से गेहूँ की प्रोटीन 60 प्रतिशत तक पच जाती है।

**शहद ( मधु ) *Mel***

शहद अत्यन्त गुणकारी, शक्तिवर्द्धक तथा रक्तशोधक है। सुश्रुत ( अध्याय 45) ने मधु को अग्निदीपक, पित्त, कफ, प्रमेह, विष, तृषा, अतिसार को शान्त करने वाला माना है। सुश्रुत (सूत्रस्थान 45,132-146) में शहद के भेद तथा गुणों का विस्तृत वर्णन किया गया है। शुद्ध शहद आँख में लगाने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। घाव पर लगाने से लाभ पहुँचाता है। यदि सर्दी के कारण गला बैठ जाए तो दिन में तीन-चार बार एक-एक चम्मच शहद चाटना चाहिए। सिरके में मिला हुआ शहद दाँत साफ करता है तथा मसूड़ों को शक्ति देता है। टायफाइड और पेचिश के रोगाणु इसके प्रयोग से मर जाते हैं।

शहद में लगभग 75 प्रतिशत शर्करा ( डेक्सट्रोस, लेवूलोज ), 20 प्रतिशत पानी तथा 5 प्रतिशत अन्य पदार्थ, जैसे फूलों के अम्ल, फूलों के सूक्ष्म कण, सुगन्धि उत्पन्न करने वाले तत्व और मोम आदि होते हैं।

**खाँड**

खाँड वात, पित्तनाशक, स्निग्ध तथा वामक है। सफेद बूरा हलका,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



शीतल और वीर्यवर्द्धक होता है। मिश्री हलकी, पित्त तथा वातनाशक है।

**दाख ( द्राक्षा )** *Vitis vinifera*

द्राक्षा मीठी, ठण्डी, प्यास में लाभदायक, रक्तवर्द्धक एवं शोधक है। बैठे गले को लाभ पहुँचाती है। इसमें द्राक्षशर्करा की अधिकता होती है। इसकी रासायनिक बनावट लगभग इस प्रकार है—

द्राक्षशर्करा 55.6 प्रतिशत, पानी 23 प्रतिशत, सेलुलोस 1.94 प्रतिशत, ऐल्बूमिनॉइड 2.7 प्रतिशत, वसा 0.66 प्रतिशत, राख 1.3 प्रतिशत, अन्य नाइट्रोजनरहित पदार्थ 14.1 प्रतिशत।

**अगर ( अगुरू, क्रिमिजम् )** *Aquilaria agallocha*

प्राचीनकाल में अगर इत्र तथा औषधियाँ बनाने में प्रयोग किया जाता था। भावप्रकाश के अनुसार यह गर्म, चरपरा, त्वचा के लिए हितकर, नेत्र रोग, कर्ण रोग तथा शीत, वात और कफनाशक है। सुश्रुत ने इसे कान्तिवर्द्धक तथा खुजली, कुष्ठ एवं कफनाशक माना है। इसकी लकड़ी को जल में औटाकर पीने से ज्वर की प्यास बुझ जाती है। यह लकड़ी अगरबत्ती बनाने में प्रयोग की जाती है। ''यह कीड़ों को परे भगाती है; अत: इसका चूरा चर्म और वस्त्रों को जूँ तथा पिस्सुओं से बचाने के लिए प्रयोग किया जाता है।''[6]

अगर में एक उड़नशील तेल होता है जो ईथर में विलय हो जाता है। दूसरी राल होती है जो एल्कोहॉल में घुलनशील है। अगर में लगभग 1 प्रतिशत वसीय अम्ल होता है।[4ख]

**तगर ( तगर )** *Valeriana wallichii*

मध्यकाल में तगर जर्मनी, एशिया, यूनान और एशिया मायनर में सुगन्धित मसालों में प्रयोग किया जाता रहा है। यह मिर्गी, सिर दर्द, नेत्र रोग, रुधिरविकार, विषविकार और मूर्च्छा को दूर करता है। यूनानी मतानुसार गुर्दे के रोग तथा जोड़ों के दर्द में भी लाभदायक है। अनेक विषैले जीवों तथा कीटों को दूर भगाता है।

तगर में 14 प्रतिशत स्टार्च, 5-6 प्रतिशत शर्करा, 0.56 प्रतिशत वसीय अम्ल, 13 प्रतिशत एल्बूमिनॉइड, 10 प्रतिशत पानी, 10 प्रतिशत सेलुलोस, 10 प्रतिशत लिग्निन, 4 प्रतिशत गोंद, 3 प्रतिशत टैनिन तथा थोड़ी मात्रा में उड़नशील तेल, रेजिन (राल), सिट्रिक अम्ल, टार्टरिक अम्ल आदि होते हैं।[7क,8]

**केसर ( कुंकुम, अग्नि शेखर )** *Crocus sativus*

मस्तक पर केसर का लेप करने से सिर दर्द दूर हो जाता है। राजनिघण्टु ने इसे विषनाशक तथा भावप्रकाश ने कृमिनाशक माना है। वमन, खुजली,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



पित्त और चर्म रोग में भी लाभदायक है। इसका रंग $\alpha$, $\beta$, $\gamma$ क्रोसेटिन के कारण होता है। साधारण केसर में 15.6 प्रतिशत पानी, 13.35 प्रतिशत स्टार्च एवं शर्करा, 0.6 प्रतिशत वाष्पशील (सगंध) तेल, 5.63 प्रतिशत अवाष्पशील तेल, 43.64 प्रतिशत नाइट्रोजनरहित पदार्थ, 4.48 प्रतिशत तन्तु तथा 4.27 प्रतिशत राख होती है।[९क]

**कस्तूरी ( मृगनाभिः )** *Moschus moschiferus*

कस्तूरी गर्म, वीर्यवर्द्धक तथा कफ, वात, विष, वमन और शीत को हरने वाली मानी गई है। जरा-सी कस्तूरी भी लाखों घनफुट वायु को सुगन्धित कर देती है। इसकी सुगन्ध अधिक फैलने वाली तथा अन्य पदार्थों की सुगन्ध की अपेक्षा अधिक समय तक रहने वाली है।

**जायफल ( जातिफलम् )** *Myristica fragrans*

जायफल गर्म, तीक्ष्ण, हलका, सुगन्धित, रुचिकारक, पौष्टिक, पाचक, स्वर के लिए हितकर, कफ, वात, खाँसी, पीनस, मुख की दुर्गन्ध, वमन तथा हृदय रोगनाशक है। यूनानियों ने इसे तिल्ली, गठिया और लकवा में लाभदायक माना है। भावप्रकाश के अनुसार यह कृमिनाशक है। जायफल में 30-40 प्रतिशत वसा, 5-15 प्रतिशत वाष्पशील तेल तथा कुछ स्टार्च आदि होते हैं।[९ख]

**जावित्री ( जातिपत्री )** *Myristica fragrans*

जावित्री रुचिकारक, स्वादिष्ट और सौन्दर्यवर्द्धक है। कफ, खाँसी, वमन और तृषा को दूर करती है। भावप्रकाश इसे कृमिनाशक मानता है।

**बड़ी इलायची ( दिव्यगन्धा व कान्ता )** *Amomum subulatum*

बड़ी इलायची चरपरी, हलकी तथा गर्म है। तृषा, विष, वमन, कफ, पित्त, खुजली, दमा, रुधिरविकार, खाँसी और मूत्र रोग नाशक है।

**छोटी इलायची ( तीक्ष्णगन्धा व व्यःस्था )** *Elettaria cardamomum*

छोटी इलायची चरपरी, शीतल तथा हलकी होती है। इसे धन्वंतरी तथा भावप्रकाश ने दमा, खाँसी, क्षय और बवासीर नाशक माना है। यह वमन और कफ में भी हितकर है।

**दालचीनी ( बहुगन्धा व दारुसिता )** *Cinnamomum zeylanicum*

दालचीनी सुगन्धित, पौष्टिक, पाचक तथा कृमिनाशक है। खुजली, अतिसार, वमन, अरुचि, वात एवं प्यास में लाभदायक है। यदि कफ के कारण स्वर बैठ जाए तो उसे ठीक कर देती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



दालचीनी में एक वाष्पशील तेल, म्यूसिलेज तथा स्टार्च आदि होते हैं। इसके तेल में मुख्यतया सिनेमिक ऐल्डिहाइड तथा थोडी मात्रा में टर्पीन, पाइनीन, लिनेलोल, युजिनॉल, फेलेण्ड्रीन आदि होते हैं।[९ग]

**लौंग ( लवंग )** *Syzygium aromaticus*

लौंग चरपरी, कटु, पाचक, नेत्रों के लिए हितकर, रुचिकारक तथा खाँसी, हिचकी, उदरपीड़ा, वमन, प्यास, कफ, पित्त एवं क्षय रोग नाशक है। भुनी हुई लौंग मुँह में रखने से गले के दर्द में लाभ होता है। इसे माथे और नाक पर लगाने से सर्दी से बचाव रहता है। इसका तेल दन्त एवं दाढ़ शूल में हितकर है।

लौंग की साधारण रासायनिक बनावट निम्नलिखित है— [७ख, ९घ]

पानी 16.4 प्रतिशत, नाइट्रोजन युक्त पदार्थ 6 प्रतिशत, उड़नशील तेल 17 प्रतिशत, वसा 6.2 प्रतिशत, शर्करा 1.32 प्रतिशत, सेलुलोस 10.56 प्रतिशत, अन्य नाइट्रोजन रहित पदार्थ 37.7 प्रतिशत तथा राख 4.9 प्रतिशत है।

लौंग के तेल में युजिनॅाल तथा टर्पिन होता है।

**तालीसपत्र ( धात्रीपत्रम् )** *Abies webbiana*

तालीसपत्र उष्ण, तीक्ष्ण और हलका होता है। कफ वात अरुचि, गुल्म, दमा, क्षय रोग, पित्त, रक्त विकार और मुख रोग नाशक है।

**पानड़ी ( पाची )** *Pogostemon Pachouli*

पानड़ी के पत्तों की सुगन्ध के कारण वस्त्रों को कीड़ा नहीं लगता। यह रक्तस्रावरोधक तथा वायुनाशक है।

**नागरमोथा ( चक्रांक्षा तथा कलापिनि )** *Cyperus rotundus*

नागरमोथा कफ, पित्त, तृषा, दाह, श्रम, अतिसार, रक्तविकार, अरुचि, ज्वर तथा कृमिनाशक है। खाँसी में लाभदायक है। पेट के कीड़ों को मारता है।

**इन्द्रजौ ( कुटजबीजम् )** *Holarrbena antidysentrica*

इन्द्रजौ को चरपरा तथा शीतल माना गया है। ज्वर, अतिसार, वमन, कुष्ठ, वात, कफ और शूल नाशक है। इसके बीज गर्म पानी में भिगोएँ, इस जल के सेवन से पेट के मरोड़ दूर हो जाते हैं। श्वेत कुटजबीज तथा छाल ज्वर दूर करने में सिनकोना की तरह काम करते हैं; पर सिनकोना की भाँति बेचैनी, जी मिचलाना, सिरदर्द आदि नहीं होने देते। इन्द्रजौ और कुड़ा की छाल मिश्री के साथ मिलाकर प्रयोग करने से ज्वरातिसार दूर हो जाता है। यूनानी मतानुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


इसका धुआँ बवासीर में लाभदायक है।

**कपूरकचरी ( गन्धपलासी )** *Hedychium spicatum*

कपूरकचरी अरुचि, वमन, दुर्गन्ध, ज्वर, शूल, हिचकी तथा रक्त विकार में लाभदायक है।

कपूरकचरी में स्टार्च की मात्रा अधिक होती है। इसकी रासायनिक बनावट निम्नलिखित है—[4ग,10]

स्टार्च 52.3 प्रतिशत, सेलुलोस 15 प्रतिशत, पानी 13.6 प्रतिशत, ऐल्बूमिनॉइड तथा कार्बनिक अम्ल 2–4 प्रतिशत, ग्लूकोसाइड 1 प्रतिशत, गोंद 2.8 प्रतिशत, राख 4.6 प्रतिशत।

**कचूर ( कर्चूरः, गन्धसारम् )** *Curcuma zedoaria*

कचूर कटु, चरपरा और रुचिकारक है। खाँसी, वात, कफ, कुष्ठ, बवासीर, तिल्ली, मिर्गी आदि रोगों में लाभदायक है। कृमिनाशक, अग्निदीपक, दिल, दिमाग और मेदे को शक्ति देने वाला है। इसका लेप मुँह की फुन्सियों को नष्ट करता है।

कचूर में 36 प्रतिशत ऐल्बूमिनॉइड, 17.2 प्रतिशत स्टार्च, 10.92 प्रतिशत तन्तु, 10.31 प्रतिशत पानी तथा कुछ सुगन्धित तेल और शर्करा होती है।

**बालछड़ ( जटामांसी )** *Nardostachys jatamansi*

बालछड़ पौष्टिक है। रक्तविकार, चर्मरोग, गले तथा सीने के रोगों, खाँसी, मूर्च्छा और अफारे को दूर करती है। नेत्र ज्योति बढ़ाती है। बालों को काला करती है।

**नागकेसर ( नागपुष्पम् )** *Mesua ferrea*

नागकेसर कुछ उष्ण है। आयुर्वेद के अनुसार यह रुधिर विकार, वात, पित्त, कफ, दुर्गन्ध, तृषा और विष को नष्ट करता है। यूनानी मतानुसार यह पेट के कीड़े मारता है; पित्त, कफ तथा विष विकार को दूर करता है।

**चिरौंजी ( स्नेहबीजम् )** *Buchanania lanzan*

चिरौंजी शीतल, धातुवर्द्धक, ज्वर और तृषा में लाभदायक है। इसे वात, पित्त, फुन्सी तथा खुजली नाशक माना जाता है।

चिरौंजी में 58–59 प्रतिशत वसीय अम्ल, 28 प्रतिशत ऐल्बूमिनॉइड, 5.7 प्रतिशत पानी, 2.5 प्रतिशत गोंद, 2.8 प्रतिशत तन्तु तथा 3.3 प्रतिशत राख होती है।[11]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**कुलिंजन ( सुगन्धा, अग्रगन्धा )** *Alpinia officinarum*

कुलिंजन खाँसी, कफ तथा वातनाशक है। यह रुचिकारक और स्वर को उत्तम करने वाला है। मुख, हृदय तथा कण्ठ का शोधक है। यदि आवाज़ खराब हो गई हो तो कुलिंजन के प्रयोग से ठीक हो जाती है।

इसके तने में कृमिनाशक गुण है। इसका प्रयोग मुँह तथा शरीर के अन्य भागों की दुर्गन्ध नष्ट करने के लिए किया जाता है।[12] कुलिंजन की जड़ में कैम्फॉलाइड, गैलेन्गिन तथा अल्पाइनिन पाए गए हैं। इसके तेल में मैथिल सिनिमेट, सीनिओल, कपूर आदि होते हैं।[१ङ]

**सुगन्धबाला ( बाला )** *Pavonia odorata*

सुगन्धबाला की जड़ प्राय: पतली, कुछ मुड़ी हुई तथा सात-आठ इंच लम्बी होती है। यह सुगन्धियुक्त होती है तथा पेचिश और दस्त रोकने में लाभदायक है।

**आँवला ( आमलकी, शीतफला )** *Phyllantbus emhlica*

आँवला त्रिफला का प्रधान अंग है। इसमें विटामिन सी की बहुलता होती है। स्वभाव से शीतल है, वीर्य, आयु और तेज को बढ़ाता है। यह टूटी हड्डी को जोड़ने वाला तथा नेत्रों और बालों के लिए हितकर है। कफ, और पित्त में लाभदायक है। बुखार और उसकी दाह को शान्त करता है। इसे रक्त को शुद्ध करने वाला, रुचिकारक और दमा तथा खाँसी का नाश करने वाला माना गया है।

कच्चा आँवला कसैला होता है, परन्तु पक जाने पर स्वादिष्ट हो जाता है। कच्चे आँवले में पके हुए फल की अपेक्षा अधिक टैनिक ऐसिड होता है। यदि गुठली निकालकर बाकी फल को $100^0$ सेल्सियस पर सुखाया जाए तो उसकी रासायनिक बनावट निम्नलिखित होती है[13] —

टैनिन शर्करा आदि 36.1 प्रतिशत, सेलुलोस 17.8 प्रतिशत, ऐल्बिूमिनॉइड 13.08 प्रतिशत, गौंद 13.75 प्रतिशत, गैलिक अम्ल आदि 11.32 प्रतिशत, खनिज पदार्थ 4.12 प्रतिशत, नमी 3.83 प्रतिशत

**बादाम ( वाताद )** *Preunus amygadalus*

बादाम उष्ण, स्निग्ध, बलकारक, वीर्यवर्द्धक तथा वातनाशक है। इसका तेल बुद्धिवर्द्धक तथा मस्तिष्क विकार नाशक होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


**गिलोय ( अमृतवल्ली )** *Tinospora cordifolia*

गिलोय कसैली, गर्म, हलकी, भूख बढ़ाने वाली, बलकारक और आयुवर्द्धक है। ज्वर, दाह, तृषा, रक्त दोष, वमन, पाण्डुरोग, खाँसी, कोढ़, कृमि, खूनी बवासीर तथा विष नाशक है। यह शक्कर के साथ पित्त को, घी के साथ वात को, सौंठ के साथ आमवात को और शहद के साथ कफ को नष्ट करती है।[14] गिलोय में बर्बरीन नामक ऐल्केलॉइड विद्यमान है।[९च]

**नीम ( निम्बः )** *Azadirachta indica*

नीम का प्रत्येक भाग औषधि के रूप में प्रयुक्त होता रहा है। यह नेत्रों के लिए लाभप्रद, अरुचि, विष विकार, कुष्ठ तथा कृमिनाशक और रक्त शोधक है। चर्मरोगों को दूर करता है।

यज्ञ सामग्री में नीम के पत्ते डाले जाते हैं। इसके पत्ते वस्त्रों व पुस्तकों में रखने से कीड़े नहीं लगते। पत्तों को दही में पीसकर लेप करने से दाद मिट जाती है। नीम के पत्तों का तेज अर्क पिलाने से संखिया तथा अफीम विष उतर जाता है। इसकी पत्तियों में विटामिन ए पर्याप्त मात्रा में होता है।

नीम के तेल की मालिश करने से खुजली मिट जाती है। इसके तेल की रासायनिक बनावट के विषय में मतभेद है। हिलडिच और मूर्ति के अनुसार इसमें 14.9 प्रतिशत पामिटिक अम्ल, 14.4 प्रतिशत सिट्रिक अम्ल, 61.9 प्रतिशत औलीक अम्ल, 7.5 प्रतिशत लिनोलिक अम्ल तथा 1.3 प्रतिशत एरेचिडिक अम्ल पाया जाता है।[15]

**गूगल ( गुगुलः, देवधूपः, वायुघ्नः )** *Commiphora mukul = Commiphora wightii*

गूगल की धूनी देने मात्र से ही नजला, ज्वर, स्वरनाली का प्रदाह, बवासीर तथा क्षय में लाभ हो जाता है। गूगल को कृमिनाशक, पाचन शक्ति को बलवान करने वाला, सूजन, कफ, कुष्ठनाशक, वीर्यवर्द्धक, टूटी हड्डी को जोड़ने वाला, वात, प्रमेह, पथरी नाशक तथा रक्तशोधक माना गया है। गूगल तपेदिक नाशक हवन सामग्री में डाला जाता है। यह क्षत को बहुत शीघ्र भरता है, अथर्ववेद (19.38.1) में कहा है कि जिसे गूगल की सुगन्ध प्राप्त होती है, उसे रोग पीड़ित नहीं करते।

**न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।**
**यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते॥**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



आर. एन चोपड़ा ने इसकी रासायनिक बनावट की विस्तार से चर्चा की है ।[१छ]

**नारियल ( नारिकेलः, सदाफलः )** *Cocos nucifera*

कच्चे नारियल का पानी प्यास तथा मूत्र-सम्बन्धी रोगों में लाभप्रद है। इसकी गिरी शीतल, पौष्टिक, तृषा, वात, पित्त और रुधिर विकार नाशक है। इसका तेल बालों को स्वस्थ और लम्बा करता है तथा उन्हें सफेद होने से रोकता है।

नारियल की गिरी की प्रतिशत बनावट इस प्रकार है–

पानी 46.6 प्रतिशत, वसा 36.0 प्रतिशत, नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ 5.5 प्रतिशत, लिग्निन 2.9 प्रतिशत, राख 0.96 प्रतिशत, अन्य नाइट्रोजनरहित पदार्थ 8.06 प्रतिशत।

नारियल के तेल में 45 प्रतिशत लौरिक अम्ल, 20 प्रतिशत मिरिस्टिक अम्ल, 10 प्रतिशत कैप्रिक अम्ल, 9 प्रतिशत कैप्रिलिक, 7 प्रतिशत पामिटिक अम्ल, 5 प्रतिशत स्टिऐरिक अम्ल, 2 प्रतिशत ओलीक अम्ल एवं 2 प्रतिशत कैप्रोइक अम्ल होते हैं।[16]

**तिल ( होमधान्यः, तिलः )** *Sesamum indicum*

काले तिल सर्वश्रेष्ठ और वीर्यवर्द्धक होते हैं। सफेद तिल मध्यम और लाल तिल गुणहीन माने गए हैं। साधारणतया तिल चरपरा, उष्ण तथा कफ, वात एवं पित्त नाशक, बलकारी, बुद्धिवर्द्धक, अग्निदीपक, त्वचा के लिए हितकारी व दाँतों को उत्तम बनाने वाला होता है। तिल का तेल बाल बढ़ाता है और उन्हें काला रखता है।

तिल का लगभग 50 से 55 प्रतिशत भाग वसीय अम्ल ग्लिसराइड होता है। तिल के तेल में विभिन्न ग्लिसराइडों की प्रतिशत मात्रा निम्नलिखित है[17] –

ओलीक ग्लिसराइड 48.1 प्रतिशत, लिनोलिक ग्लिसराइड 36.8 प्रतिशत, पामीटिक ग्लिसराइड 7.7 प्रतिशत, सिट्रिक ग्लिसराइड 4.6 प्रतिशत, ऐराकिडिक ग्लिसराइड 0.4 प्रतिशत, लिग्नोसेरिक ग्लिसराइड 0.04 प्रतिशत।

**अन्न**

यज्ञ में ऋत्वनुसार खाद्यान्न डालने का विधान भी शास्त्रकारों ने किया है। इसमें चावल, उड़द, जौ आदि मुख्य हैं। जौ कान्तिवर्द्धक है। गले तथा चर्म सम्बन्धी रोग, कफ, पित्त, खाँसी, दमा एवं तृषा नाशक माना गया है। उड़द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बलकारक, वीर्यवर्द्धक और मलभेदक है। यह दमा, श्रम तथा बवासीर को दूर करता है। खाद्यान्नों की प्रतिशत बनावट तालिका में दी गई है।

| | चावल[18क] | गेहूँ[18ख] | जौ[18ग] | चना[18घ] | हरे मूँग[18ङ] | उड़द |
|---|---|---|---|---|---|---|
| स्टार्च | 78.3 | 68.4 | 70.0 | 53.8 | 54.1 | 55.8 |
| पानी | 12.8 | 12.5 | 12.5 | 11.2 | 10.8 | 10.1 |
| ऐल्बूमिनॉइड | 7.3 | 13.5 | 11.5 | 19.5 | 22.2 | 22.7 |
| वसा | 0.6 | 1.2 | 1.3 | 4.6 | 2.7 | -- |
| तन्तु | 0.4 | 2.7 | 2.6 | 7.8 | 5.8 | 4.8 |
| राख | 0.6 | 1.7 | 2.1 | 3.1 | 4.4 | 4.4 |

इस प्रकार यज्ञ सामग्री में डाली जाने वाली वस्तुएँ अत्यधिक उपयोगी हैं। इनके द्वारा रोगों का नाश तथा बल की वृद्धि सम्भव है।

## संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. ऋषि दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, सामान्यप्रकरण

2. ऋषि दयानन्द सरस्वती, पञ्चमहायज्ञविधि

3. ऋषि दयानन्द सरस्वती, संस्कारविधि, (क) सामान्यप्रकरण, (ख) गृहाश्रमप्रकरण अग्निहोत्र, (ग) गृहाश्रमप्रकरण, (घ) अन्त्येष्टिप्रकरण

4. W.Dymock, C.G.H. Warden and D.Hooper, Pharmacographia Indica, Vol. III, Thacker, Spink & Co., Calcutta (1890), (क) pp. 200-203, (ख) pp. 217-32, (ग) pp. 417-20

5. A.W Blyth and M.W Blyth, Foods : Their Composition and Analysis (1909)

6. J.F.Dastur, Useful Plants of India and Pakistan, D.B. Taraporwala & Co. Ltd., Bombay (1964), pp.31-32

7. W. Dymock, C.G.H. Warden and D. Hooper, Pharmacographia Indica, Vol.II, Thacker, Spink & Co., Calcutta, (1891), (क) pp.238, 413, (ख) pp.20-23

8. R.N. Chopra and N.N. Ghosh, Indian J.Med. Res., Vol. XIII, 533 (1926)

9. R.N. Chopra, I.C. Chopra, K.L. Handa and L.D. Kapur, Indigenous Drugs of India, Dhur & Sons, Clacutta (1958), (क) p.324, (ख) p.202, (ग) pp.126-27, (घ) p.172, (ङ) p.277, (च) pp.427-28, (छ) p.286, (ज) pp.360-62

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



10. J.C. Thresh, Pham.J., (3) XV., 361

11. Satya Prakash, Agnihotra, The Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha, Delhi (1937)

12. J.F Dastur, Medicinal Plants of India and Pakistan, D.B. Taraporewala & Co. Ltd., Bombay (1977), p. 17

13. रमेश बेदी, त्रिफला, हिमालय हर्बल इंस्टिट्यूट, गुरूकुल कांगड़ी, हरिद्वार

14. तुलना : K.R Kirtikar and B.D Basu, Indian Medicinal Plants, Vol.I, Bishen Singh Mahendra Pal Singh, New Connaught Place, Dehradun (1984), pp. 77-79

15. T.P Hilditch and K.S Murti, J.Soc. Chem. Ind., 310 (1933) cf. 9 ज

16. G.D Elsdon and H. Hawley, Analyst, 38, 3-7 (1912)

17. G.S Jamieson and W.F Baughman, J.Am.Chem. Soc., 46, 775 (1924)

18. A.H. Church, Food-Grains of India, Chapman and Hall, London (1886), (क) p.73, (ख) p.95, (ग) p.99, (घ) p.128, (ङ) p.151

**अन्य उपयोगी सन्दर्भ ग्रन्थ**

1. The Wealth of India : Raw Materials, Vol. I-XI, Publication and Information Directorate, CSIR, New Delhi (1948–1972)

2. B.D Basu (Major), Indian Medicinal Plants, Vol I–IV, Periodical Experts, Delhi (1975)

3. R. Rastogi and B.N.Mehrotra, Compendium of Indian Medicinal Plants, Central Drug Research Institute, Lucknow, and Publication and Information Directorate, New Delhi (1993)

4. P.K. Warrier, V.P.K. Nambiar and C. Ramankutty, Indian Medicinal Plants, Vol. I - IV, Orient Longman Ltd., 160, Anna Salai, Madras (1993)

5. A. Husain, O.P.Vermani, S.P.Popli, L.N. Mishra, M.M. Gupta, G.N. Srivastava, Z.Abraham and A.K. Singh, Dictionary of Indian Medicinal Plants, Central Institute of Medicinal and Aromatic Plants, Lucknow (1992)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# दहन क्रिया

कुछ लोगों का विचार है कि उत्तम पदार्थों को खाने की अपेक्षा अग्नि में जलाकर नष्ट कर देना उचित नहीं। महर्षि दयानन्द ने इस शंका का समाधान करते हुए लिखा है, ''जो तुम पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता।''[1] यह उत्तर स्पष्टतया वैज्ञानिक है। जैसे अभाव से भाव की उत्पत्ति सम्भव नहीं वैसे ही भाव को भी अभाव में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। ''शास्त्र में लिखा है कि '**नासत आत्मलाभः। न सत आत्महानम्।**' अर्थात् जो नहीं है वह कभी नहीं हो सकता और जो है वही आगे होता है। ... अस्ति से अस्ति होती है। नास्ति से किसी प्रकार नहीं हो सकती।''[2] ऋषि दयानन्द मानते हैं कि प्रकृति अनादि (जिसका आदि न हो अर्थात् बनाई न जा सके) तथा अनन्त (जिसका अन्त न हो, अर्थात् जिसे नष्ट न किया जा सके) है। इसका समर्थन आधुनिक विज्ञान ने द्रव्य अविनाश नियम (Law of Conservation of Mass) के द्वारा किया है। इस नियम के अनुसार ''किसी भी रासायनिक प्रतिक्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों के भार का योग अपरिवर्तित रहता है।''[3]

अग्नि में आहुति देने से हानि तो कोई नहीं, लाभ अवश्य है। जब अग्नि में कोई वस्तु डाली जाती है तो अग्नि उसके स्थूलरूप को तोड़कर सूक्ष्म बना देती है। यजुर्वेद (1, 8) में अग्नि को **धूरसि** कहकर इसी सत्य को प्रतिपादित किया गया है। **धूरसि** का अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है, ''भौतिक अग्नि (**धूः**) सब पदार्थों का छेदन और अन्धकार का नाश करने वाला (**असि**) है।''[4] ''भौतिक अग्नि इसलिए है कि वह उन होम-द्रव्यों को परमाणुरूप करके वायु और जल के साथ मिलकर शुद्ध कर दे।'' यह है भी दैनिक अनुभव की बात। पचास किलोग्राम दाल में एक ग्राम हींग का कुछ प्रभाव नहीं होता; परन्तु वही हींग भूनकर छौंक लगाने से सारी दाल को सुगन्धित कर देती है। मिर्च खाने से केवल खाने वाले व्यक्ति पर ही उसका प्रभाव पड़ता है, किन्तु उसे भली प्रकार पीसकर उड़ा देने से आस-पास बैठे व्यक्ति खाँसने लगते हैं। उसी मिर्च को जलाने से बहुत लोगों पर उसकी तीक्ष्ण गन्ध का प्रभाव होता है, अतः अग्नि में डाल देने से पदार्थ हलका होकर शीघ्र सारी वायु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में फैल जाता है। उसकी भेदक शक्ति बढ़ जाती है। यह तथ्य ग्राहम के गैसीय व्यापनशीलता के नियम (Grahm's Law of Diffusion of Gases) का आधार है। इस नियम के अनुसार ''निश्चित ताप और दबाव पर गैसों की व्यापन गतियाँ उनके घनत्वों के वर्गमूल की विपरीत अनुपाती होती हैं।''[5] अतः जो गैस जितनी हलकी होगी, वह उतनी ही शीघ्र वायु में मिल सकेगी। ऐसा ही यजुर्वेद (6,.16) में कहा गया है–

**स्वाहाकृतेऽऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम्**

'यज्ञ में स्वाहापूर्वक आहुति देने से वायु ऊपर आकाश में जावे।'

प्राचीन भारतीयों को अर्द्धशिक्षित मानने वालों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान तथा अंग्रेज़ी पढ़े बिना भी ऋषि दयानन्द ने लिखा है, ''अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके, फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृति करता है।''[1] ऋषि आगे लिखते हैं, ''सुगन्ध (केसर, कस्तूरी, पुष्प, इत्र आदि की सुगन्ध) का वह सामर्थ्य नहीं कि गृहस्थ वायु को बाहर निकालकर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न-भिन्न और हलका करके बाहर निकालकर पवित्र वायु का प्रवेश कर देता है।''[1] ''अतर और पुष्पादि का सुगन्ध तो उसी दुर्गन्ध वायु में मिलकर रहता है, उसको छेदन करके बाहर नहीं निकाल सकता, और न वह ऊपर चढ़ सकता है, क्योंकि उसमें हलकापन नहीं होता। उसके उसी अवकाश में रहने से बाहर का शुद्ध वायु उस ठिकाने में जा भी नहीं सकता, क्योंकि खाली जगह के विना दूसरे का प्रवेश नहीं हो सकता।''[6] अतः स्पष्ट है कि यदि ऋषियों ने वायु शुद्धि के लिए अग्निहोत्र को अपनाया है तो किसी अन्धविश्वास के कारण नहीं, अपितु वैज्ञानिक आधार पर।

अग्निहोत्र में किन-किन रासायनिक परिवर्तनों के द्वारा क्या-क्या पदार्थ उत्पन्न होते हैं – इसका निश्चय करना कठिन है, क्योंकि

(क) यज्ञकुण्ड में सर्वदा तापांश समान नहीं रहता। तापांश भिन्नता के कारण एक ही हव्य द्रव्य भिन्न-भिन्न पदार्थ बना सकता है।

(ख) यह भी सम्भव है कि रासायनिक क्रिया पूर्ण होने से पूर्व ही जो पदार्थ बने हैं, वे आपस में मिलकर कोई अन्य पदार्थ बना लें या उड़कर वायु में मिल जाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(ग) यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक ऑक्सीकरण सदा पूर्ण हो ही जाए, क्योंकि वायु की मात्रा न्यूनाधिक होती रहती है।

फिर भी यज्ञ के द्वारा उत्पन्न होने वाले पदार्थों का अनुमान तो लगाया ही जा सकता है। हाँ, यह निश्चय करना कठिन है कि कितनी सामग्री डालने से कौन-सा पदार्थ कितनी मात्रा में उत्पन्न होगा।

अब हवन में डाले जाने वाले पदार्थों के जलने पर उत्पन्न होने वाली गैसों पर विचार आरम्भ करते हैं —

**कपूर**

कपूर आसानी से जलता है, अतः यज्ञाग्नि कपूर जलाकर प्रज्वलित की जाती है। यह जलते समय धुआँ उत्पन्न करता है। इसका कुछ भाग बिना किसी रासायनिक परिवर्तन के उड़ जाता है जो वायु में मिलकर उत्तम सुगन्धि उत्पन्न करता है। वस्तुतः यह दुर्गन्ध को नष्ट नहीं कर पाता, अपितु उसे अपनी सुगन्ध से मात्र छिपा लेता है। कपूर के शेष भाग का एक तैल बन जाता है जिसमें पाइनीन, डाइपैण्टीन, सीनिओल, युजिनॉल, सैफ्रोल और टर्पिनिऑल आदि होते हैं।

**लकड़ी**

अग्निहोत्र में जो द्रव्य डाले जाते हैं, उनका लगभग 75 प्रतिशत भाग लकड़ी होती है। इसका मुख्य प्रयोजन अग्नि प्रज्वलित रखना है, अतः आवश्यकता से अधिक समिधाएँ डालने का विशेष लाभ नहीं है। इसके जलने से लगभग 500° सेल्सियस तापांश हो जाता है।

लकड़ी के मुख्य भाग सेलुलोस तथा लिग्नोसेलुलोस में लगभग 47.62 प्रतिशत हाइड्रोजन, 28.57 प्रतिशत कार्बन तथा 23.81 प्रतिशत ऑक्सीजन होती है। लकड़ी के जलने का अभिप्राय सेलुलोस तथा लिग्नोसेलुलोस का ऑक्सीकृत हो जाना है। फिर धीरे-धीरे जो हाइड्रोकार्बन बनती है, वे 400-600° सेल्सियस के बीच जल जाती है। सेलुलोस तथा लिग्नोसेलुलोस ऑक्सीजन के साथ मिलकर कार्बन डाइऑक्साइड तथा पानी बनाते हैं (द्रष्टव्यः समीकरण 1)।* पानी भाप बनकर उड़ जाता है तथा कार्बन डाइऑक्साइड भी वायु में मिल जाती है।

यदि वायु का प्रवेश कम हो तो कुछ कार्बन मोनोऑक्साइड गैस

---

*सभी समीकरण परिशिष्ट 4 में दिए गए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



(समीकरण 2) तथा कार्बन की धूल (समीकरण 3) भी बन सकती है, परन्तु यज्ञवेदी खुला स्थान होने से वायु भली प्रकार आती रहती है; अत: कार्बन मोनोऑक्साइड तथा कार्बन की धूल बनने की सम्भावना बहुत कम है। वैसे कार्बन मोनोऑक्साइड बननी भी नहीं चाहिए, क्योंकि यह विषैली गैस है। हाँ, कार्बनधूलि विशेष हानिकारक नहीं है; अपितु यह वर्षा में सहायक है।

यज्ञकुण्ड की बनावट, समिधाओं की लम्बाई तथा उनके रखने की विधि तापांश और वायु की ऐसी मात्रा तय कर देती है कि हवन के समय लकड़ी की आसवन क्रिया हो जाने की पूरी सम्भावना है। आसवन क्रिया के कारण अनेक पदार्थ पैदा होते हैं। फिर ये पदार्थ आपस में मिलकर कई अन्य पदार्थ बना लेते हैं। इस प्रकार समस्त क्रिया पेचीदा बन जाती है और उत्पन्न गैसों का सही अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। यज्ञ में तो यह कार्य और भी कठिन है, क्योंकि वायु और गर्मी की मात्रा न्यूनाधिक होती रहने से परिस्थितियाँ भी निश्चित नहीं रह पातीं।

हाले और पामर[7] का विचार है कि आसवन क्रिया के आरम्भ होते ही लकड़ी सूखना प्रारम्भ कर देती है। इस समय अधिक मात्रा में पानी तथा थोड़ा-सा ऐसीटिक ऐसिड और मैथेनॉल भी बनता है। उसके पश्चात् कई गैसें उत्पन्न होती रहती हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिक बुग[8] ने लकड़ी की आसवन क्रिया के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। वह इस प्रकार पैदा होने वाली गैसों में एक सौ से भी अधिक पदार्थों की पहचान करने में सफल रहे हैं। उनके अनुसार इस क्रिया के कारण कई हाईड्रोकार्बन (मेथैन, बैंजीन आदि), ऐल्डिहाइड (फार्मेल्डी-हाइड, ऐसीट ऐल्डिहाइड, फरफ्युरल, प्रोपिओन ऐल्डिहाइड आदि), कीटोन (ऐसीटोन, मेथिल एथिल कीटोन आदि), अम्ल (फार्मिक अम्ल, ऐसीटिक अम्ल, प्रोपिऑनिक अम्ल एवं नार्मल कैप्रोइक अम्ल आदि), एल्कोहॉल (मैथिल एल्कोहॉल, एथिल एल्कोहॉल आदि), फीनोल, कार्बन डाइऑक्साइड तथा पानी उत्पन्न होते हैं।

कौनसा पदार्थ कितनी मात्रा में उत्पन्न होता है, यह लकड़ी की बनावट, तापांश, दूसरे पदार्थों की विद्यमानता आदि पर निर्भर करता है। उत्पन्न द्रव्यों में एल्कोहॉल तथा कार्बनिक अम्ल भी हैं, अत: वे परस्पर मिलकर एस्टर बना लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह अनुमान लगाना कठिन है कि पूर्व उल्लिखित पदार्थ किन-किन रासायनिक परिवर्तनों के कारण बनते हैं, परन्तु क्लेसन के विचारानुसार आसवन क्रिया के समय जो ऐसीटिक ऐसिड बनता है, वही टूटकर ऐसीटोन बना देता है तथा अन्य कीटोन्ज़ भी इसी प्रकार अपनी संगत के अम्लों से ही उत्पन्न होती हैं (समीकरण 4)। यहाँ हाइड्रोजन भी बनती है, किन्तु आसवन क्रिया से उत्पन्न होने वाले पदार्थों में क्लेसन व उनके सहयोगी हाइड्रोजन गैस प्राप्त नहीं कर सके थे; यद्यपि कुछ अन्य वैज्ञानिकों ने इस गैस को भी विद्यमान पाया है।[9]

यहाँ जो हाइड्रोकार्बन उत्पन्न हुई हैं, उनमें भी कई परिवर्तन होते रहते हैं, उदाहरणार्थ – मैथेन से ऐसीटिलीन तथा हाइड्रोजन आदि बन सकते हैं (समीकरण 5)। यह हाइड्रोजन अन्य पदार्थों के साथ मिलकर नए पदार्थ बना सकती है तथा वायु में मिल सकती है।

रालयुक्त लकड़ी के जलने तथा आसवित हो जाने पर मुख्यतः फार्मेल्डीहाइड की उत्पत्ति होती है, किन्तु कुछ मात्रा में टर्पिनिऑल, टर्पिन, सीनिओल तथा अन्य उड़नशील पदार्थ भी बनते हैं।[10]

लकड़ी के जलने पर बची राख की मात्रा कम से कम 0.2 प्रतिशत तथा अधिकाधिक 4 प्रतिशत होती है। साधरणतया राख 1 प्रतिशत से कम ही बनती है। इसमें मुख्यतः कैल्सियम, पोटैशियम, मैग्नीशियम तथा थोड़ी मात्रा में ऐलुमिनियम, लोहा, मैंगनीज, सोडियम, फॉस्फोरस तथा गन्धक आदि होती हैं। पोटैशियम ऑक्साइड की विद्यमानता के कारण खाद के रूप में भी राख का प्रयोग किया जा सकता है। किसी समय राख को पौटेश-प्राप्ति का मुख्य साधन समझा जाता था।

## घृत

कपूर द्वारा अग्नि प्रदीप्त कर समिधाओं पर घृत की आहुतियाँ देनी प्रारम्भ की जाती हैं। घी अग्नि को प्रज्वलित रखता है, परन्तु यदि इसका मात्र यही एक प्रयोजन होता तो किसी भी तेल या घी का प्रयोग किया जा सकता था; किन्तु शास्त्रों में गोघृत का विधान किया गया है। ऐसा क्यों? इसका कारण है कि शुद्ध गोघृत जलने पर कोई हानिकारक पदार्थ उत्पन्न नहीं करता जबकि वनस्पति घी को जलाने का स्वास्थ्य पर सुखद प्रभाव नहीं पड़ता। इस प्रसंग में डॉक्टर फुन्दनलाल अग्निहोत्री एम.डी. ने कुछ कार्य किया है। उन्होंने टी.बी. सेनेटोरियम, जबलपुर में टी.बी. के रोगियों की यज्ञ के द्वारा चिकित्सा करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



का प्रयास किया। उनके अनुभवानुसार गाय के घी से यज्ञ करने पर रोगी शीघ्र आरोग्य हुए। भैंस के घी से बहुत देर में लाभ हुआ, परन्तु वनस्पति घी के प्रयोग से रोग बढ़ना प्रारम्भ हो गया।[11] अतः वैदिक शास्त्रों में यज्ञ के लिए गोघृत प्रयोग करने का विधान उचित है।

घी ग्लिसरॉल तथा कार्बोक्सिलिक अम्लों के मेल से बना है। घी में पाए जाने वाले अम्लों में पामिटिक अम्ल, ओलीक अम्ल, मिरिस्टिक अम्ल, स्टिऐरिक अम्ल तथा लिनोलीइक अम्ल मुख्य हैं। वैसे इसमें थोड़ी मात्रा में ब्यूटिरिक अम्ल, लौरिक अम्ल, कैप्रिलिक अम्ल तथा कैप्रोइक अम्ल आदि भी होते हैं। अतः घृत के जलने से वही पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जो ग्लिसरॉल तथा उपरिलिखित अम्लों की दहन क्रिया पर बनते हैं। इसलिए इन पदार्थों के ऑक्सीकरण आदि पर विचार करना उचित है —

**ग्लिसरॉल**

ग्लिसरॉल का जलना कुछ जलहरण तथा कुछ ऑक्सीकरण है। यह मान लेने से फार्मेल्डीहाइड की उत्पत्ति सम्भव हो जाती है; क्योंकि ग्लिसरॉल के परमाणु में से पानी निकलने पर ऐक्रोलीन बन जाती है जो ऑक्सीकृत हो जाने पर फार्मेल्डीहाइड बना देती है (समीकरण 6 तथा 7)।

ग्लिसरॉल के ऑक्सीकरण पर कई पदार्थ बनते हैं। डॉक्टर फीनार [12] ग्लिसरॉल के ऑक्सीकरण पर ग्लिसर ऐल्डिहाइड, ग्लिसरिक अम्ल, टार्टरोनिक अम्ल तथा मीसोऑक्सैलिक अम्ल की उत्पत्ति मानते हैं (समीकरण 8)। इनके अतिरिक्त ग्लाइकोल ऐल्टिहाइड, ग्लाइऑक्सल तथा ऑक्सैलिक अम्ल भी बन सकते हैं (समीकरण 9)।

इस प्रकार कई पदार्थों के बनने की सम्भावना है। वास्तविक रासायनिक परिवर्तन वायु की मात्रा तथा तापांश आदि पर निर्भर करते हैं।

**अम्ल**

घृत में सन्तृप्त तथा असन्तृप्त दोनों प्रकार के अम्ल होते हैं। ऑक्सीकरण के समय सन्तृप्त वसीय अम्लों के परमाणु टूटकर कुछ ऐल्डिहाइड बना देते हैं। फिर ये ऐल्डिहाइड ऑक्सीजन के साथ मिलकर अम्ल में परिवर्तित हो जाते हैं। इन अम्लों से हाइड्रोकार्बनों की उत्पत्ति होती है, उदाहरणार्थ — घी में 30-40 प्रतिशत ओलिक अम्ल होता है। इसके ऑक्सीकरण पर नार्मल नॉनिलिक ऐल्डिहाइड बन जाता है (समीकरण 10)। नार्मल नॉनिलिक ऐल्डिहाइड से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri 

नानेनोइक अम्ल एवं ओक्टेन (समीकरण 11) और ओलिक अम्ल से उत्पन्न दूसरे पदार्थ से नार्मल ऑक्टिलिक ऐल्डिहाइड, आक्टेनोइन अम्ल एवं हेप्टेन (समीकरण 12) बनती हैं, परन्तु यह तो केवल एक सम्भावना है। इसके अतिरिक्त और भी कई प्रकार के पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार लिनोलीइक अम्ल से कैप्रोनिक ऐल्डिाहाइड तथा वैलेरिक ऐल्डिहाइड बनते हैं।

घृत मे विद्यमान सन्तृप्त वसीय अम्ल भाप के साथ मिलकर साधारण छोटे अम्ल उत्पन्न करता है। फिर यह अम्ल हाइड्रोकार्बन बना सकते हैं, उदाहरणार्थ – ब्यूटिरिक अम्ल सर्वप्रथम मेथैन और हाइड्रोक्सीप्रोपिऑनिक अम्ल बनाएगा (समीकरण 13 तथा 14)। इसी प्रकार अनेक पदार्थों की उत्पत्ति सम्भव है (समीकरण 15)। यदि अम्लों की दहन-क्रिया पूर्ण हो जाए तो कार्बन डाइऑक्साइड तथा पानी बन जाएगा।

यह आवश्यक नहीं कि यज्ञ के समय उपरिलिखित सभी क्रियाएँ पूर्ण हों क्योंकि कई बार पदार्थ ऑक्सीकरण से पूर्व ही वायु में मिल जाता है, उदाहरणार्थ – अकेले घी को अग्नि में जलाइए। सुगन्धि उत्पन्न होगी, अतः स्पष्ट है कि यहाँ ऑक्सीकरण पूर्ण नहीं हुआ अन्यथा गन्धरहित कार्बन डाइऑक्साइड गैस बन जाती। यज्ञ के समय पूर्व उल्लिखित सभी या उनमें से कुछ पदार्थ बनते हैं।

घी के जलने से जो सुगन्ध उत्पन्न होती है, उसका कारण कैप्रोनिक ऐल्डिहाइड, नार्मल औक्टोलिक ऐल्डिहाइड, नार्मल नॉनलिक ऐल्डिहाइड, वैलेरिक ऐल्डिहाइड तथा कई अन्य उड़नशील ऐल्डिहाइड व वाष्पशील वसीय अम्ल होते हैं। ये सभी वायु में मिल जाते हैं, जिससे सर्वत्र सुगन्धि फैल जाती है।

घी के जो कण बिना जले ही वायु में उड़ जाते हैं, वे अतिसूक्ष्म होते हैं। ये अग्निहोत्र से उत्पन्न गैसों को स्वयं में लीन करके वायुमण्डल को अधिक समय तक पवित्र रखते हैं। घृत के ये कण वर्षा के लिए धूलिकणों का कार्य भी करते हैं। घी की आहुति देने से जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं, उनमें हाइड्रोकार्बनों की मात्रा पर्याप्त है। ये हाइड्रोकार्बन यज्ञकुण्ड के तापांश (450-550 °C) पर ऑक्सीजन से मिलकर कुछ अन्य पदार्थ बना लेते हैं, उदाहरणार्थ – व्हीलर तथा ब्लेयर[13] के अनुसार मेथैन ऑक्सीकरण पर मेथिल एल्कोहॉल तथा फार्मेल्डीहाइड आदि बना देती है (समीकरण 16)। क्योंकि ये सभी पदार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


वायु में मिलते रहते हैं, इसलिए फार्मेल्डीहाइड के ऑक्सीकृत हो जाने की बहुत कम सम्भावना है।

इसी प्रकार एथेन, फार्मेल्डीहाइड, ऐसीट ऐल्डिहाइड, मेथिल एल्कोहॉल, एथिल एल्कोहॉल, फार्मिक ऐसिड आदि अनेक पदार्थ बना देती हैं।[14, 15]

**हव्य सामग्री**

जब अग्नि अच्छी प्रकार प्रज्वलित हो जाए तो सामग्री की आहुतियाँ दी जाती हैं। सामग्री के द्रव्यों के जलने पर बनने वाले पदार्थों के विषय में अभी अनुसन्धान की आवश्यकता है।

कपूरकचरी, नागरमोथा, जटामांसी, सफेद चन्दन का चूरा तथा अगर आदि लकड़ी की भाँति स्वयं जलकर शेष क्रियाओं के पूर्ण होने के लिए गर्मी भी उत्पन्न करते हैं।

तिल ग्लिसरॉल तथा इलेइडिक अम्ल व स्टिऐरिक अम्ल के मेल से बना है। इसी प्रकार के कुछ वसीय अम्ल चिरौंजी, नारियल, लौंग, जौ, गेहूँ तथा चावल आदि में भी विद्यमान हैं, अतः इनके जलने से जहाँ अन्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं; वहाँ पूर्व चर्चित वैसे पदार्थ भी बनते हैं, जिनकी उत्पत्ति ग्लिसरॉल तथा वसीय अम्लों के ऑक्सीकरण से सम्भव है।

यज्ञ सामग्री की वस्तुओं में कार्बोहाइड्रेट भी विद्यमान हैं। शर्करा तथा स्टार्च इसी कार्बोहाइड्रेट के दो प्रकार हैं। चावल, गेहूँ, जौ, उड़द, कपूरकचरी, तगर आदि में स्टार्च होता है। ऋषि दयानन्द ने यज्ञ में स्टार्च वाले द्रव्यों के भी डालने का विधान किया है। शर्करा वाले द्रव्यों में खाँड मुख्य है। यह यज्ञ सामग्री में पर्याप्त मात्रा में डाली जाती है। इसके अतिरिक्त शहद, दुग्ध, तगर, गेहूँ, लौंग, दाख, छुहारे, नरकूचर आदि में भी पर्याप्त मात्रा में शर्करा होती है। इनके जलने से स्वास्थ्य के लिए हितकर गैसें उत्पन्न होती हैं। फ्रांस के विज्ञान के एक भूतपूर्व अध्यापक टिलवर्ट का विचार है कि खाँड के तेजी से जलने पर फार्मेल्डीहाइड की उत्पत्ति होती है। अग्निहोत्र में ऐसा ही होता है। यह गैस कृमियों का नाश करके वायु को मनुष्योपयोगी बना देती है।

खाँड को वैज्ञानिक भाषा में सुक्रोस कहते हैं। 210° सेल्सियस पर गर्म करने से इसका पानी उड़ जाता है और कार्मल नामक एक पदार्थ बन जाता है। अधिक गर्म करने पर कार्बन डाइआक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, मेथैन, एथिलीन, ऐसीटिलीन, ऐसीटोन, फार्मिक अम्ल, एथानॉल, ऐक्रोलीन आदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


उत्पन्न होते हैं। खाँड के ऑकसीकरण पर ऑक्सैलिक अम्ल तथा सैकेरिक अम्ल बनते हैं।[16]

मीठे फलों और शहद में ग्लूकोस तथा फ्रक्टोज आदि होते हैं। फलों में इनकी उत्पत्ति सम्भवत: खाँड के जलीय विच्छेदन से होती है। इनके ऑक्सीकरण पर भिन्न-भिन्न पदार्थ बनते हैं, उदाहरणार्थ – ग्लूकोस के ऑक्सीकरण पर ग्लूकोनिक अम्ल, सैकेरिक अम्ल और टार्टरोनिक अम्ल बनते हैं (समीकरण 17)। इसी प्रकार अन्य पदार्थ भी ऑक्सीकृत होते रहते हैं। सभी प्रकार के दूध में लैक्टोस होता है। गोदुग्ध में इसकी मात्रा 4-6 प्रतिशत है। इसके ऑक्सीकरण पर सैकेरिक अम्ल भी बनता है।

यज्ञ द्वारा वायु सुगन्धित हो जाती है क्योंकि अग्निहोत्र में कस्तूरी, केसर, अगर, श्वेत चन्दन, जायफल, जावित्री, लौंग, कुलिंजन, बालछड़, इलायची और कपूर आदि भी डाले जाते हैं। ये द्रव्य कुछ वाष्पशील सौरभिक पदार्थ उत्पन्न करते हैं। वस्तुत: पाइनीन, बोर्निओल, सिट्रल, सीनिऑल, टर्पिनिऑल, सैफ्रोल, थाइमोल, कार्वाक्रॉल, सिनेमिक अम्ल, सैलिसिलिक अम्ल तथा अगर, देवदार, तिल, लौंग और सन्दल के तेल आदि की उत्पत्ति सम्भव है।

कुलिंजन के आसवन पर जो तेल बनता है उसमें 48 प्रतिशत मेथिल सिनेमेट, 20-30 प्रतिशत सीनिऑल, कपूर तथा सम्भवतया d-पाइनीन भी होते हैं।[17क] दालचीनी से जो तेल निकलता है उसमें मुख्यत: सिनेमिक ऐल्डिहाइड तथा कुछ युजिनॉल, लिनेलूल तथा पाइनीन आदि मिलते हैं।[17ख] तेजपत्र आसवन पर सिनेमिक ऐल्डिहाइड, बेंजिल ऐल्डिहाइड, सैफ्रोल तथा युजिनॉल बनाता है। लौंग भाप के द्वारा होने वाली आसवन क्रिया पर एक तेल देती है, जिसमें 34-95 प्रतिशत तक फीनोल, सैस्क्वीटर्पीन तथा थोड़ी मात्रा में कीटोन, एल्कोहॉल और एस्टर होते हैं। लौंग के तेल में फरफ्यूरल तथा वैनीलिन भी होता है।

जायफल 30-40 प्रतिशत वसा तथा 5-25 प्रतिशत वाष्पशील तेल देता है। पावर तथा साल्वे के विचारानुसार इस तेल में 80 प्रतिशत पाइनीन तथा कैम्फीन, 8 प्रतिशत डाइपैण्टीन, 6 प्रतिशत एल्कोहॉल, 4 प्रतिशत माइरिस्टिसिन, 0.6 प्रतिशत सैफ्रोल तथा 0.2 प्रतिशत युजिनॉल होते हैं।[17घ]

आर.एन. चोपड़ा ने लिखा है कि प्राय: चन्दन की लकड़ी को खूब बारीक रगड़कर भाप के साथ गर्म करने पर उसमें से तेल निकलता है जिसमें लगभग 90 प्रतिशत सेण्टालोल होता है।[17ङ] यज्ञ में भी चन्दन का चूरा ही प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


किया जाता है। अग्निहोत्र के समय भाप भी काफी बनती रहती है, अतः इस तेल का बनना सम्भव है। लकड़ी के टुकड़ों के स्थान पर चूरे का प्रयोग किया जाना विज्ञान संगत है। जे.एफ़. दस्तूर के अनुसार "चन्दन का यह सुगन्धित तेल अपवित्रतानाशक, कीड़ों को परे भगाने तथा मारने वाला है।"[18]

देवदार के तेल में पाइनीन तथा हाइड्रोकार्बन होते हैं। यह तेल कृमिरोधक है। बड़ी इलायची सीनिऑल तथा टर्पिनिऑल और बालछड़ बोर्निओल को उत्पन्न करती है।

जो पदार्थ इस प्रकार उत्पन्न होते हैं, वे 200-400° सेल्सियस तापांश पर उड़ जाते हैं तथा वायु में मिलकर सुगन्धि पैदा करते हैं। यज्ञ के समय जो धुआँ और भाप बनता है, वह इन पदार्थों को बहुत दूर तक फैला देता हैं। इस प्रकार इन पदार्थों को वायु में मिलने में सुविधा हो जाती है। अतः जलाने से किसी वस्तु का नाश नहीं होता, केवल रूप बदल जाता है। आहुति देने के पश्चात् भी पदार्थों का उपयोगी भाग ज्यों-का-त्यों बना रहता है, वे केवल सूक्ष्म हो जाते हैं। उनका सूक्ष्म आकार उन्हें वायु में मिलने एवं फैलने में सुविधा प्रदान करता है। उड़ने वाले तेलों के परमाणुओं का व्यास लगभग $1 \times 10^{-2}$ से $1 \times 10^{-7}$ मिलीमीटर होता है। ये परमाणु श्वास के द्वारा रोगी के फेफड़ों में पहुँचकर क्षत को भर देते हैं।

इन पृष्ठों में कुछ रासायनिक परिवर्तनों की चर्चा की गई है, पर ये परिवर्तन तभी फलदायक हो सकेंगे जब घी और सामग्री थोड़ी-थोड़ी मात्रा में थोड़ी-थोड़ी देर के पश्चात् प्रज्वलित अग्नि में डाले जाएँगे। यदि सभी द्रव्यों की आहुति एकदम, बिना किसी विधि के दे दी गई तो अग्नि भी बुझ जाएगी तथा क्रियाएँ पूर्ण न होने के कारण वांछित गैसें उत्पन्न न हो सकेंगी। यदि सामग्री देर में डाली जाए तो गर्मी का उचित लाभ न उठाया जा सकेगा, अतः बिना विधि के किया गया अवैज्ञानिक कार्य यज्ञ नहीं कहलाएगा। ऋषि दयानन्द ने पुणे में सातवें दिन का व्याख्यान देते हुए ठीक ही कहा था, "योग्य रीति से यथाविधि होम करना चाहिए। एकदम मन भर घी जला दिया व चम्मच-चम्मच करके मनभर घृत को वर्ष भर जलाते रहे तो भी होम नहीं होगा।" महर्षि के इन वचनों के वैज्ञानिक महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता।

इस असुविधा को दूर करने के लिए प्राचीन ऋषियों ने आहुति का परिमाण तथा इसके डालने का समय निश्चित किया है। ऋषिवर दयानन्द ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भी संस्कारविधि (सामान्य प्रकरण) में आहुति के सामान्य परिमाण के विषय में लिखा है, "कम-से-कम छह मासा भर घृत व अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो, अधिक-से-अधिक छटाँक भर की आहुति देवें।" यह परिमाण साधारण यज्ञों के लिए है। बड़े यज्ञों में अधिक आहुति देने का विधान है। देव दयानन्द आगे लिखते हैं– "छह-छह मासे घृतादि एक-एक आहुति का परिमाण न्यून-से-न्यून चाहिए और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा।" प्रत्येक आहुति देने से पूर्व उस आहुति के लिए निश्चित किए मन्त्र का उच्चारण करने का विधान है। इससे हवन-सामग्री अर्पित करने का समय व्यवस्थित हो जाता है तथा क्रिया सुविधापूर्वक चलती रहती है। साथ ही वेद की रक्षा तथा समय का सदुपयोग भी होता है। मन्त्रों से यज्ञ के प्रत्येक अंग का साथ-साथ ज्ञान होता जाता है; क्योंकि उस क्रिया से सम्बन्धित मन्त्र ही तत्-तत् क्रिया के अवसर पर उच्चारित किया जाता है। यही मन्त्रों का विनियोग कहलाता है। सारा कार्य बोझ न बनकर पवित्र धार्मिक कृत्य बन जाता है। इसी धार्मिक भावना के कारण यज्ञ के समय कितने ही नर-नारी केवल दर्शक के रूप में बैठे रहते हैं। उन्हें भी हवनीय गैसों से युक्त सुगन्धित वायु में सांस लेकर निज स्वास्थ्य की रक्षा करने का अवसर प्राप्त होता रहता है।

**प्रकाश-संश्लेषण**

यज्ञ में सूर्य की किरणों का बहुत महत्त्व होता है। महर्षि दयानन्द[1] ने लिखा है, "सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है।" वैसे भी यज्ञवेदी खुला स्थान होता है, जहाँ प्रकाश सुविधा से पहुँच सके। सूर्य के प्रकाश को इतना महत्त्व देने का कारण यह है कि यज्ञ के समय उत्पन्न हुए पदार्थों में सूर्य के प्रकाश की विद्यमानता में कई प्रकार के रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं। कुछ ऐल्डिहाइड और एल्कोहॉल ऑक्सीकृत हो जाते हैं। हाइड्रोकार्बन तथा फीनोल का बहुलीकरण हो जाना सम्भव है। पराबैंगनी प्रकाश में कुछ कार्बन डाइऑक्साइड पानी के साथ मिलकर फार्मेल्डीहाइड भी बना लेती है (समीकरण 18)।

फार्मेल्डीहाइड अन्य कई परिवर्तनों के द्वारा भी बनता रहता है, उदाहरणार्थ – एसीटिक अम्ल, ग्लिसरॉल, ऐसीटोन आदि भी हवन से उत्पन्न होते हैं। धर और आत्माराम[19] वायु और सूर्य के प्रकाश की विद्यमानता में इनका फार्मेल्डीहाइड में बदल जाना सम्भव मानते हैं (समीकरण 19, 20)। पाइरूविक अम्ल,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ऑक्सैलिक अम्ल, ग्लूकोस, फॉर्मिक अम्ल, प्रोपिऑनिक अम्ल, खाँड, स्टार्च, स्टिऐरिक अम्ल भी सूर्य के प्रकाश में थोड़ी मात्रा में फार्मेल्डीहाइड बनाते हैं। सम्भवत: ये पदार्थ सर्वप्रथम ऑक्सीकरण के कारण फार्मेल्डीहाइड में बदल जाते हैं।[19]

सूर्य के प्रकाश का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य प्रकाश-संश्लेषण है। हरे पौधों में क्लोरोफिल होता है। पौधे धूप की विद्यमानता में क्लोरोफिल की सहायता से कार्बन डाईऑक्साइड को कार्बोहाइड्रेट में बदल देते हैं। इस क्रिया को प्रकाश-संश्लेषण कहते हैं।

क्लोरोफिल के बिना यह परिवर्तन नहीं हो सकता। भारतीय शास्त्रकारों ने भी यज्ञवेदी के चहुँ ओर हरी लताएँ तथा पौधे लगाने का विधान किया है। इससे जहाँ स्थान की शोभा और रमणीयता बढ़ती हैं, वहाँ प्रकाश-संश्लेषण भी होता रहता है।

प्रकाश-संश्लेषण केवल धूप में ही सम्भव है। यही कारण है कि दिन की अपेक्षा रात्रि में वायु में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा 12 प्रतिशत बढ़ जाती है। यदि कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा वायु में 0.6 प्रतिशत हो तो पता नहीं चलता। परन्तु 1.3 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड से सिर पीड़ा आदि होती है। वैसे सिरपीड़ा एवं मूर्च्छा आदि का कारण कार्बन डाइऑक्साइड नहीं, अपितु ऑक्सीजन का अभाव होता है। यदि 7.5 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड हो तो वायु विषाक्त बन जाती है, अत: यज्ञ के लिए सूर्योदय के पश्चात् तथा सूर्यास्त से पूर्व का समय निश्चित करना वैज्ञानिक महत्त्व रखता है।

प्रकाश-संश्लेषण के लिए पानी की विद्यमानता भी आवश्यक है। यज्ञ के समय पानी कई रासायनिक परिवर्तनों से बनता रहता है। हव्य पदार्थों में भी पर्याप्त मात्रा में पानी होता है। यही जल भाप बनकर उड़ जाता है तथा वायु में रहता है। इस प्रकार अग्निहोत्र प्रकाश-संश्लेषण की सारी शर्तें पूरी करता है।

यज्ञ द्वारा अल्प मात्रा में उत्पन्न हुई कार्बन डाइऑक्साइड हानि नहीं पहुँचाती, अपितु पौधों के लिए भोजन देती है। पौधे कार्बन डाइऑक्साइड और ऑक्सीजन के बिना जीवित नहीं रह सकते। वनस्पति जगत् प्रतिवर्ष $60\times10^{12}$ किलोग्राम कार्बन डाइऑक्साइड को निज भोजन में परिवर्तित कर रहा है। भूमि पर पड़ने वाली सूर्य की शक्ति का $1\times10^{-4}$ भाग केवल इसी क्रिया में व्यय हो रहा है, अत: कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में किंचित वृद्धि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अधिक प्रकाश संश्लेषण होगा जिसका फसल पर सुखद प्रभाव पड़ेगा। मैक्समोव इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि "खाद की गर्म तह से आच्छादित पौधों की तेज वृद्धि केवल इस प्रकार उत्पन्न अधिक तापांश के कारण ही नहीं अपितु कार्बन डाइऑक्साइड की अधिक मात्रा के कारण भी होती है।"[20] इसका प्रमाण एक अन्य वैज्ञानिक ने सन् 1904 में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ाकर अधिक फसल उत्पन्न करके दिया था।

ऐसा समझा जाता है कि चूने की भट्ठियों में काम करने वालों को कार्बन डाइऑक्साइड की विद्यमानता के कारण फेफड़ों का क्षय रोग नहीं होता। इसी आधार पर एक फ्रेंच डॉक्टर ने क्षय रोग की एक चिकित्सा निकाली थी। विधि इस प्रकार है कि कार्बन डाइऑक्साइड से युक्त वायु में कैल्सियम धूल पर शुष्क गर्मी का प्रयोग किया जाए। फिर इस वायु में रोगी लम्बे-लम्बे साँस ले। यह प्रयोग इस डॉक्टर के द्वारा कई रोगियों पर एक-दो दिन में बारह-बारह बार किया गया। ऐसा करने से क्षय के चिह्न दूर होने शुरू हो गए तथा रोगियों का भार भी बढ़ने लगा।[21]

सूर्य का प्रकाश मनुष्य के लिए वैसे भी लाभदायक है। इससे शरीर में विटामिन-डी बनता है, जिससे हड्डियाँ पुष्ट होती हैं। उदय और अस्त होने वाले सूर्य की किरणें तो और भी अधिक गुणकारी होती हैं। अथर्ववेद (2, 32, 1) में कहा गया है —

**उद्यन्नादित्यः क्रिमीहन्तु निम्रोचन्हन्तु रश्मिभिः।**
**ये अन्तः क्रिमयो गवि॥**

"उदय होता हुआ और अस्त होने वाला सूर्य अपनी किरणों से भूमि और शरीर में रहने वाले रोगजनक कीटों का नाश करता है।"

सूर्य का प्रकाश कृमिनाशक है। राबर्ट कौच ने सन् 1890 में अनेक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया था कि क्षय रोग (फेफड़ों के क्षय रोग को छोड़कर) के कीटाणु इस प्रकाश में दस मिनट से अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकते। इसीलिए क्षय रोग से ग्रस्त व्यक्ति को धूप सेकनी चाहिए। सम्भवतः जनसाधारण इसे यह कहकर मान्यता प्रदान करती है कि अँधेरे में क्षय रोग फूलता-फलता है तथा प्रकाश में यह दुम दबाकर भाग जाता है। अतः यज्ञ के लिए सूर्योदय के पश्चात् तथा सूर्यास्त से पूर्व का समय ही ठीक है।

**संदर्भ एवं टिप्पणियाँ**

1. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास, तुलनाः ऋषि दयानन्द सरस्वती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



के पुणे प्रवचन (व्याख्यान सात)
2. स्वामी दयानन्द सरस्वती, मौलवी मुहम्मद कासम और पादरी स्काट आदि के मध्य चाँदपुर मेले में 20 मार्च, 1877 को हुई चर्चा ''सत्यधर्म विचार'' शीर्षक से प्रकाशित पुस्तिका
3. "In all chemical and physical changes, the total mass of the system remains constant." or "Matter can neither be created nor destroyed by any physical or chemical means though it may change its form."
4. ऋषि दयानन्द सरस्वती, यजुर्वेदभाष्य (1, 8)
5. "At certain temperature and pressure, the rates of diffusion of gases are inversely proportional to the square roots of their densities."
6. ऋषि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषयविचार
7. Hawley and Palmer, U.S. Department Agr.Bull., 129 (1914)
8. G.Bugge, 'Industrie der Helzdistillations Produkta', Theeder Steinkoff, Dresden & Leipzig (1927)
9. Klason quoted in Cellulose Chemistry by Henser
10. Satya Prakash, Agnihotra, The Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha, Delhi (1937), pp.130-31
11. डॉक्टर फुन्दनलाल अग्निहोत्री, हवन यज्ञ द्वारा क्षय रोग की चिकित्सा (1956)
12. I.L. Finar, Organic Chemistry, Longman, London (1973)
13. T.S. Wheeler and E.W.Blair, J.Soc. Chem. Ind., 42, 421 (1923)
14. Bone and Andrew, J.Chem. Soc., 87, 1232 (1905)
15. G.Eglff and R.E. Schaad, Chem. Revs., 9, 91-141 (1929)
16. Louise Kelley, Organic Chemistry, McGraw Hill, New York (1957)
17. R.N. Chopra, I.C. Chopra, K.L. Handa and L.D. Kapur, Indigenous Drugs of India, Dhur & Sons, Calcutta (1958), (क) p.275, (ख) p.126, (ग) p.172, (घ) p.202, (ङ) pp.243, 628
18. J.F. Dastur, Medicinal Plants of India and Pakistan, D.B. Taraporewala & Co. Ltd., Bombay (1977)
19. N.R. Dhar and Atma Ram, J. Ind. Chem. Soc., 10, 161, 287 (1933)
20. N.A. Maximov, Plant Physiology, McGraw Hill, New York (1938)
21. देवयज्ञ प्रदीपिका में ''हिन्दू मैसेज'' के ''मैडिकल सप्लीमैण्ट'' से उद्धृत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुस्तकालय
129451
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# पर्यावरण एवं नैरोग्य

आज जल, वायु, अन्न, मिट्टी ... कुछ भी शुद्ध नहीं है। प्रदूषण इतना बढ़ गया है कि अमरीका, कनाडा जैसे देशों में तेज़ाबी वर्षा एक प्रमुख समस्या बन गई है। समस्त संसार पर्यावरण-प्रदूषण से चिन्तित है। अपने कर्त्तव्य का सुचारू रूप से पालन करती हुई प्रकृति वायु के शोधन में अवश्य महत्त्वपूर्ण योगदान करती रही है, अन्यथा अब तक वायुमण्डल इतना प्रदूषित हो गया होता कि श्वास लेना दूभर हो जाता। अग्निहोत्र उस महान् प्रभु द्वारा रचाए गए इस महान् प्राकृतिक यज्ञ का ही एक रूप है। इसके द्वारा वायु की दुर्गन्ध नष्ट होकर सुगन्ध फैलती है। वेद यज्ञ को वायु की शुद्धि का हेतु मानता है –

**वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्त्रधारम्।**

यजु. 1, 3

'यज्ञ असंख्यात संसार एवं अनेक प्रकार के ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला तथा शुद्धि करने वाला कर्म है।'

इसलिए शास्त्रकारों ने प्रतिदिन यज्ञ करने का विधान किया है। मनु (2, 103) ने यज्ञ न करने वालों को दण्ड का भागी माना है। यजुर्वेद (1, 2) भी यज्ञ का त्याग न करने का स्पष्ट आदेश देता है –

**वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि।**
**परमेण धाम्ना दृ ꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्॥**

इस मन्त्र का अर्थ करते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं, ''हे विद्यायुक्त मनुष्य! तू जो यज्ञ शुद्धि का हेतु है, जो विज्ञान के प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थिर होने वाला है, जो वायु के साथ देश-देशान्तर में फैलने वाला है, जो वायु को शुद्ध करने वाला है, जो संसार का धारण करने वाला है तथा जो उत्तम स्थान से सुख का बढ़ाने वाला है, इस यज्ञ का मत त्याग कर। तेरे यज्ञ की रक्षा करने वाला यज्ञमान भी उसको न त्यागे।''[1]

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने यज्ञ को वायु शुद्धि का सर्वोत्तम साधन माना है। इसीलिए यजुर्वेदभाष्य में ऋषि लिखते हैं, ''जैसी यज्ञ के अनुष्ठान से वायु और वृष्टि जल की उत्तम शुद्धि और पुष्टि होती है, वैसी दूसरे उपाय से कभी नहीं हो सकती।''[2]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



ऋषि दयानन्द सरस्वती ने 20 जुलाई, 1875 को पुणे में सातवें प्रवचन में फ़रमाया था –

"पुष्टि-वर्धन, सुगन्ध-प्रसार और नैरोग्य ये तीन उपयोग होम अर्थात् हवन करने से होते हैं।"

"सुवृष्टि और वायु-शुद्धि होम हवनादि से होती है, इसीलिए होम करना चाहिए।"

"पहले आर्य लोगों का ऐसा सामाजिक नियम था कि प्रत्येक पुरुष प्रात:काल स्नान के बाद आहुति देता था, क्योंकि प्रात:काल में जो मल-मूत्रादिकों की दुर्गन्ध उत्पन्न होती थी, वह इस प्रात:काल के हवन से दूर होती थी। इसी तरह सायंकाल में हवन करने से दिनभर की जमी हुई जो दुर्गन्ध होती है उसका नाश होकर रातभर वायु निर्मल और शुद्ध चलती थी।"

"इन दिनों होम के न्यून होने से बारम्बार वायु बिगड़ रही है, सदा विलक्षण रोग उत्पन्न होते जाते हैं।"

भौतिक विज्ञान भी ऋषि दयानन्द के इन विचारों का समर्थन करता है। हवन से कई वाष्पशील तैल तथा उत्तम गैसें पैदा होती हैं। वे वायु के साथ सर्वत्र फैलकर मलिनता को नष्ट कर सुगन्ध फैला देती हैं।

यज्ञ न केवल वायु की दुर्गन्ध को नष्ट करता है, अपितु इसे शुद्ध कर रोगों से भी रक्षा करता है। महर्षि दयानन्द[3] का यह विचार पूर्णतया सत्य है कि "दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दु:ख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है।" ऋषि आगे लिखते हैं, "जब तक इस होम करने का प्रचार रहा, तब तक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही हो जाए।" अत: समझना चाहिए कि प्राचीन आर्य लोग अग्निहोत्र द्वारा वायु शुद्धि तथा आरोग्य प्राप्त किया करते थे।

वैसे तो भारत में प्रत्येक कार्य करने से पूर्व हवन किया जाता है, किन्तु ऋतु परिवर्तन (ऋतु सन्धि) के समय विशेष रूप से बृहद् यज्ञों का प्राचीनकाल से ही प्रचलन रहा है। इसका कारण यह है कि ऋतु सन्धि अनेक रोग उत्पन्न करती है। इन व्याधियों का निवारण भैषज्य यज्ञों के द्वारा होता है। शतपथब्राह्मण में इसकी पुष्टि की गई है –

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भैषज्ययज्ञा वा एते।

ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते॥

''ये भैषज्य यज्ञ कहलाते हैं। ऋतुओं की सन्धि में व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं, इसलिए इनका प्रयोग ऋतु सन्धि में होता है।''[4]

भारतीय घरों में नया अन्न अग्नि में अर्पित किए बिना प्रयोग में नहीं लाया जाता था। प्रत्येक ऋतु में उस ऋतु के पदार्थों द्वारा यज्ञ करने की प्रथा रही है। सम्भवत: विशेष मौसम में उत्पन्न होने वाले पदार्थ उस ऋतु-सन्धि के रोगों को दूर करने में अधिक उपयोगी हैं। इस प्रकार के यज्ञों की चर्चा भावप्रकाश (कृतान्न वर्ग 178) में भी की गई है —

अर्द्धपक्वै: शमीधान्यैस्तृणभृष्टैश्च होलक:।

होलकोऽल्पानिलो मेद: कफदोषश्रमापह:॥

भवेदथो होलको यस्य स तत्तद् गुणो भवेत्।

अर्थात् 'तिनकों की अग्नि में भूने हुए अधपके शमी धान्य (फली वाले अन्न) को होलक या होला कहते हैं। होलक स्वल्प वात है और चर्बी, कफ तथा थकान के दोषों का शमन करता है। जिस-जिस अन्न का होला होता है, उसमें उसी-उसी अन्न का गुण होता है।'

हवन के द्वारा रोगों का नाश किया जाना सम्भव है। ये रोग किस प्रकार उत्पन्न होते हैं तथा अग्निहोत्र से कैसे नष्ट हो सकते हैं, इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है।

आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान का मत है कि व्याधियों के जन्मदाता रोगाणु (रोगकीट, कृमि) हैं। रोगाणुवाद के लिए किसी व्यक्ति विशेष को श्रेय नहीं दिया जा सकता। यूँ तो आरम्भिक कार्य पाश्चर द्वारा किया गया था, परन्तु इस क्षेत्र में राबर्ट कौच, स्मिथ, किलबोर्न आदि का योग भी महत्त्वपूर्ण है। कौच ने सन् 1878 में यह सिद्ध किया था कि प्रत्येक बीमारी किसी न किसी रोगाणु के द्वारा ही पैदा होती है। यह रोग कीट भिन्न-भिन्न प्रकार के तथा बहुत छोटे होते हैं। इनमें से कई तो अति क्षुद्र होने से दिखाई भी नहीं देते। ये साधारणतया 0.003 से 0.005 मिलीमीटर तक लम्बे होते हैं, परन्तु कई रोगाणु काफ़ी बड़े होते हैं। छोटे से छोटे रोग कीट 0.00025 मिलीमीटर लम्बे होते हैं। ये अँधेरे में बढ़ते हैं। बैसिलस कॉली नामक एक कृमि लगभग बीस मिनट में टूटकर दो कृमि उत्पन्न कर देता है। फिर ये कृमि भी इसी प्रकार विभक्त होते रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यदि परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो यह अकेला कृमि केवल आठ घंटे में एक करोड़ साठ लाख कृमि उत्पन्न कर देगा। यदि रोगाणु इसी गति से बढ़ते रहते तो समस्त भूमंडल पर केवल कृमि ही कृमि होते, परन्तु ऐसा हुआ नहीं, क्योंकि परिस्थितियाँ अनुकूल न होने के कारण एक दो दिन में तो क्या एक सप्ताह में भी बहुत कम बढ़ पाते हैं। ये रोगकीट जल, वायु तथा अन्न के साथ शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं और फिर धीरे-धीरे बढ़ते रहते हैं तथा व्यक्ति को रोगी बना देते हैं। अतः व्याधियों की रोकथाम इन रोगाणुओं को नष्ट करके ही सम्भव हो सकती है।

यह हुआ आधुनिक विज्ञानवादियों का मत। प्राचीन ऋषियों का सर्वस्व तो वेद तथा वैदिक साहित्य ही था। उसी आधार पर उन्होंने अग्निहोत्र का आविष्कार किया। समिधाओं तथा हव्य-पदार्थों का चयन भी किया। इसलिए केवल रोगोत्पत्ति के आधुनिक कारण को ही आधार मानकर यज्ञ पर विचार करना उचित नहीं होगा। अतः विचारणीय विषय है — रोगों का वेद में वर्णित कारण। वेद भी रोगाणुवाद को मानता है।

**अन्वान्त्रयं शीर्षण्य१मथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्।**
**अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि॥**

अथर्व. 2, 31, 4

"आंतों में उत्पन्न होने वाले विषूचिका के कीट, शिरोभाग में उत्पन्न होने वाले दाद और पीनस रोग के उत्पादक तथा पसलियों में उत्पन्न होने वाले नासूर या राज्यक्षमा आदि रोग के कीट, (अवस्कव) त्वचा के भीतर घुस जाने वाले रोगकीट और विकृत मांस को खाने वाले व्यध्वर नामक रोगकीट को वेदवाणी में बतलाये उपायों द्वारा नष्ट करें।" इस मन्त्र में भिन्न-भिन्न रोगों की उत्पत्ति रोगाणुओं के द्वारा बतलाई गई है। इन रोगाणुओं की कुछ अन्य जातियों का वर्णन निम्नलिखित मन्त्र में किया गया है—

**दृष्टमदृष्टक्ष्मतृहमथो कुरूरुमतृहम्।**
**अल्गण्डून्त्सर्वान्छलुनान्क्रिमीन्वचसा जम्भयामसि॥**

अथर्व. 2, 31, 2

अर्थात् "दृश्य तथा अदृश्य और (कुरूरु) बुरी तरह रुलाने वाले, (अल्गण्डू) अत्यधिक खाज पैदा करने वाले तथा (शलुन) शरीर में प्रवेश कर जाने वाले रोगकीटों का वेदवाणी में बताये उपायों द्वारा नाश करें।"

ये मन्त्र रोगाणु सम्बन्धी कई रहस्यों का उद्घाटन कर रहे हैं। इन मन्त्रों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



में अवस्कव, व्यध्वर, कुरूरु, अल्गण्डू तथा शलुन आदि जो शब्द आए हैं, वे रोग कीटों की जातियों के नाम हैं। इन नामों से कृमियों के स्वभावों का पता चलता है। वेद में रोगाणुओं के लिए निम्नलिखित नाम भी आए हैं—

| | | |
|---|---|---|
| निशाचर | — | रात्रि में संचरण करने वाला |
| शर्व, निहन्ता, काल | — | प्राणों का हरण करने वाले |
| भीम | — | भयंकर |
| घोर | — | भयानक |
| यज्ञघ्न | — | जिनकी मृत्यु यज्ञ से हो |

वेद ने रोग कीट को राक्षस की संज्ञा भी दी है। ऋग्वेद (10, 97, 6) में राक्षसों को मारने वाले को वैद्य तथा रोगों को दूर करने वाला कहा गया है—

**यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।**
**विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहाऽमीवचातनः॥**

अर्थात् "जिसके पास अनेक औषधियों का संग्रह होता है, उस विप्र को भिषग् (चिकित्सक) कहते हैं। वह राक्षसों का हनन करने वाला तथा रोगों को दूर करने वाला होता है।" इस मन्त्र का बुद्धिसंगत अर्थ करने के लिए राक्षस को रोगाणु का पर्यायवाची मानना पड़ता है। वनस्पतियों द्वारा विशाल काय राक्षसों का मारा जाना सम्भव नहीं है, अन्यथा राक्षसों के साथ हुए युद्धों के वर्णनों से इतिहास के पन्नें भरे हुए न होते। वनस्पतियों से जिन राक्षसों का वध होता है, वे दृश्य एवं अदृश्य रोगाणु ही हैं।

रोगाणुओं के निवास स्थान की चर्चा निम्नलिखित मन्त्र में की गई है—

**ये क्रिमयः पर्वतेषु वनेष्वोषधीषु पशुष्वप्स्व१न्तः।**
**ये अस्माकं तन्वमाविविशुः सर्वं तद्धन्मि जनिम क्रिमीणाम्॥**

अथर्व. 2, 31, 5

"जो रोगजनक कृमि पर्वतों, वनों, औषधियों, पशुओं और पीने योग्य जलों में रहते हैं तथा जो हमारे शरीर में अन्न और जल के साथ जाते हैं — उन सबका मैं नाश करूँ।"

रोगाणु भोजन आदि के द्वारा शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

**येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्**

यजु. 16, 62

"जो खाने के अन्न तथा पीने के पानी द्वारा शरीर में प्रवेश करके नाना प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



वेद यज्ञ के द्वारा कृमियों का नष्ट हो जाना सम्भव मानता है। यजुर्वेद (1, 19) में कहा है –

शर्मास्यवधूतः रक्षोऽ वधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु।

कई रोगाणुओं के नाम भी इस बात का प्रमाण हैं कि उनका नाश यज्ञ के द्वारा हो सकता है, उदाहरणार्थ – यज्ञघ्न रोगकीटों की एक जाति है तथा यज्ञघ्न का शाब्दिक अर्थ है – वे रोग कीट जिनकी यज्ञ से मृत्यु हो जाए। अथर्ववेद (2, 31, 4) में कृमियों की एक अन्य जाति को व्यध्वर (वि+अध्वर अर्थात् यज्ञ का विरोधी) नाम से कहा गया है। इसीलिए सातवलेकर जी लिखते हैं, ''यज्ञ जहाँ न होंगे उस स्थान पर उत्पन्न होकर वृद्धिगत होने वाले अथवा यज्ञ से जिनका नाश होता है, ऐसे कृमियों को व्यध्वर कृमि बोलते हैं।''

हवन सूर्य के प्रकाश में किया जाता है। रवि किरणें तथा यज्ञाग्नि दोनों कृमिनाशक हैं। रोगकीट अधिक गर्मी में जीवित नहीं रह सकते।

ओते मे द्यावापृथिवी ओता देवी सरस्वती।
ओतौ म इन्द्रश्चाग्निश्च क्रिमिं जम्भयतामिति॥

अथर्व. 5, 2, 3, 1

अर्थात् ''सूर्य की किरण मिट्टी, तीव्र वाणी या जलधारा, बिजली, अग्नि ये सब मिलकर नाना प्रकार के रोगकीटों का नाश करते हैं।''

उप प्रागाद्देवो अग्नी रक्षोहामीवचातनः।
दहन्नप द्वयाविनो यातुधानान्किमीदिनः॥

अथर्व. 1, 28, 1

इस मन्त्र का अर्थ श्रीयुत् सातवलेकर जी ने इस प्रकार किया है- ''यातुधान, किमीदिन तथा राक्षस (यह तीनों रोगकीटों की जातियों के नाम हैं) इनका नाश करने वाला तथा रोगनाशक अग्निदेव आता है।''

अग्नि तो कृमियों का नाश करने के लिए प्रसिद्ध है। अग्नि में भोजन का विष नष्ट करने की शक्ति है।

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै
पाहि दुरिष्टै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु॥

यजु. 2, 20

अर्थात् ''हे निर्विघ्न आयु देने वाले जगदीश्वर! आप चराचर संसार में व्यापक यज्ञ को दुष्ट अर्थात् वेद विरुद्ध यज्ञ से रक्षा कीजिए, अति दुःखों से बचाइए तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भारी-भारी बन्धनों से अलग रखिए, जो दुष्ट भोजन करना है उस विपत्ति से बचाइए और हमारे लिए विष आदि दोषरहित अन्नादि पदार्थ उत्पन्न कीजिए।''[1]

केवल अग्नि में ही रोगाणुनाशक शक्ति हो, ऐसी बात नहीं है। यह गुण कई वनस्पतियों में भी है।

**वनस्पतिः सह देवैर्न आगन् रक्षः पिशाचाँ अपबाधमानः।**

अथर्व. 12, 3, 15

''दिव्य गुणों से युक्त वनस्पति आ गई, जो राक्षसों और पिशाचों का नाश करती है।''

**अजशृंगग्य्ज रक्षः सर्वान्गन्धेन नाशय॥**

अथर्व. 4, 37, 2

अर्थात् ''अजश्रृंगी नामक औषधि के गन्ध से सभी राक्षस अर्थात् रोगकीट नाश को प्राप्त होते हैं।'' विद्वानों ने अजश्रृंगी को बहुत गुणकारी माना है। चतुर्वेद भाष्यकार पण्डित जयदेव लिखते हैं कि यह वातहर, कास, श्वास, राज्यक्षमा, वमन, तृषा, अरुचि, अतिसार, चक्षुर्दोष, हृदय रोग, अति कुष्ट आदि का नाश करती है। इस के जलने से तीक्ष्णगन्ध पैदा होती है। मच्छर आदि भाग जाते हैं।

अथर्ववेद (4, 10, 2) में कहा है

**यो अग्रतो रोचनानां समुद्रादधि जज्ञिषे।**
**शंखेन हत्वा रक्षास्यत्रिणो विषहामहे॥**

अर्थात् ''... शंख के द्वारा राक्षसों का नाश होता है।''

यज्ञ सामग्री में वनस्पतियाँ कूटकर डाली जाती हैं। उनके जलने से सुगन्ध उत्पन्न होती है। उस गन्ध से कृमि मर जाते है। जहाँ औषधि से व्यक्ति विशेष को ही लाभ होता है, वहाँ अग्निहोत्र से समस्त वातावरण शुद्ध हो जाता है। फिर व्याधि पुनः आक्रमण नहीं कर पाती। अतः स्वास्थ्य-लाभ की यह उत्तम विधि है।

वेद यज्ञ द्वारा रोगों की चिकित्सा होना सम्भव मानता है-

**मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।**
**ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम्॥**

अथर्व. 3, 11, 1

''हे व्याधिग्रस्त मनुष्य! तुझे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कराने के लिए हवन द्वारा अज्ञात रोगों से तथा तपेदिक जैसे ज्ञात रोग से बचाता हूँ। इसे सब अंगों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



जकड़ने वाला रोग भी पकड़ ले तो भी इन्द्र अर्थात् शुद्ध वायु या सूर्य की गर्मी या विद्युत तथा अग्नि-होमाग्नि इसे उक्त रोग से मुक्त करें।''

ऋषियों ने वेदमन्त्रों में छिपे इन गहन रहस्यों को समझा था। वे यज्ञों के द्वारा राष्ट्र को स्वस्थ करते थे। सम्भवतः यही कारण था कि यदि एक राष्ट्र ने दूसरे देश को हानि पहुँचानी होती थी, तो वह उस देश के यज्ञों में विघ्न डालने का प्रयास किया करता था। यज्ञ की व्यवस्था भंग हो जाने से अनावृष्टि तथा रोग फैल जाते थे, समस्त देश दु:खी हो जाता था। इसीलिए ऋषियों के द्वारा रचाए गए यज्ञों की रक्षा करना राजा का मुख्य कर्त्तव्य समझा जाता था।

आयुर्वेद के चरक, बृहन्निघण्टुरत्नाकर, योगरत्नाकर, गद-निग्रह आदि ग्रन्थों में ऐसे कई योग वर्णित हैं, जिनकी अग्नि में आहुति देने से वायुमण्डल शुद्ध होता है तथा श्वास द्वारा धूनी अन्दर लेने से रोग दूर होते हैं।[5] प्रत्येक रोग का शमन एक ही प्रकार की सामग्री की आहुतियाँ देकर नहीं किया जा सकता। प्राचीन काल में ऋत्वनुसार हवन-सामग्री में परिवर्तन किया जाता था। भिन्न-भिन्न व्याधियों की चिकित्सा भिन्न-भिन्न प्रकार से हव्य-सामग्री के द्वारा की जाती थी। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं –

**गर्भ-सम्बन्धी विकार**

सौंठ तथा दूध को अच्छी प्रकार उबालकर काढ़ा तैयार कर लिया जाए। इस काढ़े तथा घृत की अग्नि में आठ सौ के लगभग आहुतियाँ देने से गर्भ तथा अपरिपक्व अवस्था सम्बन्धी विकार दूर किए जा सकते हैं।[6]

**चेचक**

चेचक की चिकित्सा के लिए निम्नलिखित सामग्री लाभप्रद है - सामान्य सामग्री (2 किलोग्राम), खाँड (500 ग्राम), सरसों, हरमल (प्रत्येक 250 ग्राम), मुनक्का, मुलहटी, बहेड़ा, नीम की निम्बोली, खूबकलाँ, मेंहदी, हल्दी, चिरायता (प्रत्येक 125 ग्राम) तथा शहद (50 ग्राम)। इस सामग्री में गोघृत मिलाकर यज्ञ करने से चेचक रोग नष्ट हो सकता है।

**क्षय रोग**

ऐसा माना जाता है कि क्षय-रोग यज्ञ करने वाले को नहीं मार सकता।

**कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहि।**

अथर्व. 7, 76, 5

क्षय-रोग फैलने पर चन्दन, कपूर तथा सुगन्धित फूलों से बनी धूप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



बत्तियाँ जलाना हितकर है। इस व्याधि के निवारण के लिए आठ-दस दिन निरन्तर यज्ञ किया जाए। प्रतिदिन एक हजार आहुतियाँ दी जाएँ। पीपल, आम या ढाक की समिधाओं का प्रयोग किया जाए। पहले दिन गाय के शुद्ध घी से यज्ञ किया जाए। फिर तीन दिन चावल, तिल, जौ, जई व मोठ को घी और शहद में भली भाँति भिगोकर आहुतियाँ दी जाएँ। अन्तिम दो दिनों में ढाक व पीपल की समिधाएँ तथा पुटखण्डा (अपामार्ग) को घी में अच्छी प्रकार भिगोकर डालें।

रोग की दूसरी व तीसरी अवस्था में निम्नलिखित सामग्री का प्रयोग करना चाहिए –

कपूर, केसर, शहद (प्रत्येक 5 ग्राम), ब्राह्मी, तगर, मकोय, इन्द्रायण की जड़, आँवला, हरड़, बादाम, पुनर्नवा, पानड़ी, बालछड़, मुनक्का, मण्डूकपर्णी, शालपर्णी, गुल सुर्ख, जायफल, असगन्ध, अडूसा, लौंग, विधारा, शतावरी, चीड़ का चूरा, वंशलोचन, पिस्ता, सुगन्धबाला, जयन्ती, खीर काकोली, खूबकलाँ, गोखरू (प्रत्येक 20 ग्राम), गिलोय, गूगल (प्रत्येक 80 ग्राम) तथा देशी शक्कर (200 ग्राम)।

इस प्रकार यज्ञ द्वारा रोगों का उपचार किया जा सकता है, किन्तु इस क्षेत्र में पर्याप्त अनुसन्धान न होने के कारण अग्निहोत्र का उचित मूल्यांकन नहीं हो पा रहा है। निष्पक्ष विद्वानों के समक्ष जितनी सच्चाई आती रही, वे उतना ही यज्ञ से प्रभावित होते रहे। इस कथन की पुष्टि निम्नलिखित प्रमाणों से होती है –

1. चेचक के टीके के आविष्कारक तथा फ्राँस के प्रसिद्ध विद्वान् डॉक्टर हैफकिन का विचार है कि "घृत जलाने से रोगजनक कृमि मर जाते हैं।" भारतीय चिकित्सक तो पुरातन काल से ही घी में कृमिनाशक गुण मानते हैं। आयुर्वेद ने सभी घृतों में गोघृत को उत्तम माना है; इसलिए हवन में अधिकतर इसी का प्रयोग करने का निर्देश है।

2. फ्राँस के विज्ञानवेत्ता ट्रिलवर्ट कहते हैं –"जलती हुई शक्कर में वायु-शुद्ध करने की बहुत बड़ी शक्ति होती है। इससे क्षय, चेचक, हैज़ा आदि रोग तुरन्त नष्ट हो जाते हैं।"[7]

3. डॉक्टर एम. ट्रेल्ट ने मुनका, किशमिश आदि सूखे फलों को (जिनमें शक्कर अधिक होती है) जलाकर देखा। वे इस निर्णय पर पहुँचे थे कि उनके धुएँ में टायफायड ज्वर के रोगकीट केवल तीस मिनट तथा दूसरी व्याधियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



रोगाणु घण्टे-दो घण्टे में मर जाते हैं।[8]

4. प्लेग के दिनों में अब भी गन्धक जलाई जाती है क्योंकि इससे रोगकीट नष्ट होते हैं। अंग्रेज़ी शासनकाल में डॉ. कर्नल किंग, आई.एम.एस., मद्रास (चेन्नई) के सेनेटरी कमिश्नर थे। उनके समय में वहाँ प्लेग फैल गया। तब 15 मार्च, 1898 को मद्रास विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के समक्ष भाषण देते हुए उन्होंने कहा था, ''घी और चावल में केसर मिलाकर अग्नि में जलाने से प्लेग से बचा जा सकता है।'' इस भाषण का सार हैफकिन ने ''ब्यूबानिक प्लेग'' नामक पुस्तक में देते हुए लिखा था, ''हवन करना लाभदायक और बुद्धिमत्ता की बात है।''

5. अमरीका के किसी डॉक्टर ने एक बार मुंबई में भाषण देते हुए कहा था, हम लोग सैंकड़ों वर्षों से इस खोज में थे कि फेफड़ों की तपेदिक को गैस की सुगन्धि से अच्छा किया जा सके। अब हम इसमें सफल हो गए हैं और इस चिकित्सा का परिणाम सब चिकित्सकों से बेहतर रहा है।[9]

6. डॉ. फुन्दनलाल अग्निहोत्री मध्यप्रदेश में राजकीय टी.बी. सेनेटोरियम, जबलपुर में मेडिकल ऑफिसर थे। वहाँ उन्होंने यज्ञ के द्वारा तपेदिक के रोगियों की चिकित्सा की तथा 80 प्रतिशत रोगियों को इस विधि से पूर्ण लाभ हुआ।[10]

वस्तुतः उपर्युक्त कथन सत्य हैं। पूर्व वर्णित पदार्थों को जलाने से जो गैसें उत्पन्न होती हैं, उनमें कृमिनाशक गुण विद्यमान हैं। यज्ञ में इनके अतिरिक्त और भी द्रव्य डाले जाते हैं, अतः ये उत्पन्न होने वाली सभी गैसें तो और भी अधिक सुख का कारण हैं। ये विद्वान् तो यज्ञ का कुछ भाग ही समझकर उसे इतना उपयोगी बता रहे हैं। यदि कहीं वे यज्ञ के पूर्ण विज्ञान को समझ लें तो अग्निहोत्र का बहुत प्रचार हो सकता है।

अब यज्ञ से उत्पन्न होने वाली कुछ गैसों के कृमिनाशक गुणों की चर्चा की जाती है।

**फार्मेल्डीहाइड**

फार्मेल्डीहाइड एक कार्बनिक पदार्थ है। यह यज्ञ में भिन्न-भिन्न क्रियाओं द्वारा काफी मात्रा में उत्पन्न होता है। डॉक्टर एम. ट्रेल्ट ने लकड़ी के धुएँ में फार्मेल्डीहाइड को विद्यमान पाया है। यह शक्तिशाली कृमिरोधक, लाभदायक कृमिनाशक तथा धूल को कृमिरहित करने वाला माना गया है। यह वाष्पशील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



होने के कारण शीघ्र ही सर्वत्र फैल जाता है। यह धागे के रंग को खराब किए बिना कपड़ों के बीच में से निकल जाता है; इसलिए रोगियों के कमरों को स्वच्छ बनाने के लिए इसका प्रयोग किया जाता रहा है।[11]

फार्मेल्डीहाइड से बहुत लाभ उठाया जाता रहा है। इसके द्वारा घरों के कृमियों का नाश तथा वायु को सुगन्धित किया जाता है। वायु की शुद्धि के लिए फार्मेल्डीहाइड लैम्प बनाए गए। इन लैम्पों में मेथिल एल्कोहॉल तथा वायु को गर्म प्लैटिनम के ऊपर जलाकर फार्मेल्डीहाइड बनाया जाता है (समीकरण 20)।

फार्मेल्डीहाइड के साथ कुछ पानी भी उत्पन्न होता है। फार्मेल्डीहाइड जल की विद्यमानता में ही कृमियों का नाश करता है। इसे सुखद संयोग समझिए कि यज्ञ में जहाँ अन्य कारणों से फार्मेल्डीहाइड बनता है, वहाँ उपरिलिखित विधि से भी इसकी उत्पत्ति होती है। हवन करने से जो हाइड्रोकार्बन पैदा होती हैं, उनके ऑक्सीकृत होने पर मेथिल एल्कोहॉल बनने की सम्भावना है। अग्निहोत्र के तापांश पर यह मेथिल एल्कोहॉल फार्मेल्डीहाइड में परिवर्तित हो जाता है। यज्ञ में काफी मात्रा में भाप भी बनती रहती है। यह भाप तथा अन्य गैसें सर्वत्र फैल जाती हैं। इसलिए जहाँ-जहाँ फार्मेल्डीहाइड होता है, वहाँ कुछ मात्रा में पानी भी विद्यमान होने से कृमिरहित क्रिया होती रहती है। अतः हवन जिस प्रकार वायु को शुद्ध और कृमिरहित करता है, आधुनिक विज्ञान की विधि भी वैसी ही है। सम्भवतः इसीलिए कर्नल किंग, आई. एम.एस. ने कहा था, "घरों के कृमियों के नाश करने की हिन्दुओं की विधि आधुनिक ढंग के अनुसार थी।" ब्रिटिश कालीन मद्रास के गर्वनर लॉर्ड एम्पथिल ने तो यज्ञ के समर्थक महर्षि मनु को विश्व के प्रसिद्धतम एवं महानतम स्वास्थ्य सम्बन्धी सुधारकों में माना है।

फार्मेल्डीहाइड अनेक कृमियों, उदाहरणार्थ – बैसिलस सबटिलिस, बैसिलस कोलाई, काम्युनिस, बैसिलस एन्थ्रेसिस आदि को नष्ट करता है। सर्वप्रथम कोच ने यह सिद्ध किया था कि बैसिलस एन्थ्रेसिस कृमि एन्थ्रैक्स नामक व्याधि फैलाता है। इस रोग से प्रायः भेड़ आदि पशु ही ग्रस्त होते हैं, किन्तु कभी-कभी यह व्याधि मनुष्यों को भी लग जाती है। इसके द्वारा बनाये गये बीजाणु (स्पोर) घास पर कई-कई दिन तक भी बने रह जाते हैं। इससे बैसिलस डिफ्थीरिया तथा स्ट्रेप्टोकोकस पायोजिनस ऑरियस आदि रोगकीट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नष्ट हो जाते हैं। इसका पाँच प्रतिशत घोल एन्थ्रैक्स के बीजाणुओं को एक से दो घण्टे में नष्ट कर देता है। इसका 40 प्रतिशत घोल 19° सेल्सियस पर बी. कोलाई, स्पाइलिम कोलेरो, माइक्रो कोकस प्रोडिज्योसस तथा बैसिलस टाईफोसस (यह टाइफाइड बुखार पैदा करता है) को केवल दस मिनट में, स्टैप्टोकोकस पायोजिनस ऑरियस को बीस मिनट में तथा बैसिलस पायोसयानिस को आधे घण्टे में नष्ट कर देता है।

यज्ञ में फार्मेल्डीहाइड के अतिरिक्त ऐसीटऐल्डिहाइड, पाइरूविक ऐल्डिहाइड, प्रोपिऑनिक ऐल्डिहाइड तथा फरफ्यूरल आदि भी उत्पन्न होते हैं। ये भी कुछ अंश तक रोगाणुनाशक माने गये हैं, परन्तु इनकी कृमिनाशक शक्ति फार्मेल्डीहाइड की अपेक्षा कम हैं, तो भी वायु को शुद्ध करने में ये भी अपना योग देते ही हैं।

**एल्कोहॉल**

हवन से मेथिल एल्कोहॉल, एथिल एल्कोहॉल, एलिल एल्कोहॉल, प्रोपिल ऐल्कोहॉल तथा ऐमिल एल्कोहॉल आदि भी उत्पन्न होते हैं। यद्यपि ऐलिल एल्कोहॉल तथा ब्युटिल एल्कोहॉल आदि में भी कुछ रोगाणुनाशक शक्ति है, परन्तु इनका इस क्षेत्र में कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

वस्तुतः एल्कोहॉल रासायनिक परिवर्तन के अन्तिम पदार्थ नहीं अपितु यह प्रायः क्रिया के मध्य में बनने वाले पदार्थ हैं। अतः ये ऑक्सीकरण आदि पर ऐल्डिहाइड व अम्ल आदि बनाते रहते हैं; यही इनका सबसे बड़ा लाभ है क्योंकि इनके द्वारा उत्पन्न होने वाले पदार्थ बहुत महत्त्वपूर्ण कृमिनाशक हैं।

**अम्ल**

अग्निहोत्र के समय भिन्न-भिन्न रासायनिक क्रियाओं के द्वारा फार्मिक अम्ल, ऐसीटिक अम्ल, पाइरोलिग्नियस अम्ल, प्रोपिऑनिक अम्ल तथा वैलेरिक अम्ल आदि उत्पन्न होते रहते हैं। घी के अम्लों का आगे ऑक्सीकरण हो जाता है।

इन में फार्मिक ऐसिड कृमिनाशक हैं। यह वायु की शुद्धि करता है। बैसिलस टाईफोसस इसकी विद्यमानता में जीवित नहीं रह सकता। इसका प्रयोग फलों को बिगड़ने से बचाने के लिए किया जाता है।

व्याधियाँ वनस्पतियों को भी ग्रस लेती हैं, अतः उपज को बढ़ाने के लिए फसल को बीमारी से बचाना अत्यावश्यक है। इस हेतु व्याधिग्रस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



फसलों पर नाना प्रकार की औषधियाँ छिड़की जाती हैं, पर्याप्त धन व्यय किया जाता है, किन्तु यज्ञ के द्वारा यह व्यय रोका जा सकता है। दूषित वर्षा तथा अपवित्र वायु के कारण पौधों को दूषित भोजन मिलता है, जिससे फसल पर कुप्रभाव पड़ता है। यज्ञ-धूम्र सर्वत्र फैलकर वायुमण्डल को रोगाणुरहित कर देता है। अग्निहोत्र द्वारा वायु और जल की शुद्धि हो जाने से उत्तम अन्नों की उत्पत्ति होती है। इसीलिए कहा है-

**देवो वनस्पतिर्जुषेताᳬहविर्होतर्यज॥** यजु. 21, 46

'तू यज्ञ कर ताकि वनस्पतियाँ हवि ग्रहण करें।'

**मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा**
**पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा॥**

यजु. 22, 28

'मूल, शाखा, वनस्पति, फूल, फल, औषधि को स्वस्थ रखने के लिए स्वाहापूर्वक यज्ञ करो।'

यज्ञ के धुएँ में ऐसीटिक ऐसिड होता है। यह अम्ल पौधे के लिए हितकर है। इसके द्वारा वनस्पति जगत् में रोग फैलाने वाले कीट मर जाते हैं। इसका 5 प्रतिशत घोल पाँच मिनट में बैसिलस कोलाई को समाप्त कर देता है। इसकी विद्यमानता में स्पाइलिस कोलेरी भी पनप नहीं सकता।

प्रोपिऑनिक अम्ल बैसिलस सबटिलिस को मार देता है। शेष अम्ल कमजोर कृमिनाशक हैं, परन्तु वे भी कुछ रोगकीटों पर अपना प्रभाव रखते हैं, अतः उनकी विद्यमानता भी लाभप्रद है।

**सौरभिक पदार्थ**

कपूर महत्त्वपूर्ण सौरभिक पदार्थ है। कम तापांश पर यह एक साधारण कृमिरोधक है, किन्तु अधिक तापांश (100° सेल्सियस से ऊपर) पर यह अच्छा कृमिनाशक माना गया है, अतः यज्ञ में उत्पन्न होने वाला कपूर का धूम्र कृमिनाशक है। कपूर के जलने पर सीनिओल भी बनता है। यह भी कृमिनाशक है। ये पदार्थ कृमियों को भले ही मार न सकें, पर उनकी वृद्धि को अवश्य रोक देते हैं।

हवन से कई प्रकार के सौरभिक पदार्थ बनते हैं। हाइड्रोकार्बनों में नेपथीलीन अधिक उपयोगी है। वह कपड़ों में कीड़े नहीं लगने देती। इसीलिए इसकी गोलियाँ कपड़ों में रखी जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri


फीनोल अच्छा कृमिरोधक है। लिस्टर युग (1837 ई. के लगभग) में इसका बहुत प्रयोग किया जाता था। आजकल बेहतर पदार्थ खोज लिए गए है, अतः इसका प्रयोग कम हो गया है; तो भी इसके द्वारा कमरों, स्नानागारों, शौचालयों, नालियों तथा हैजाग्रस्त स्थानों की शुद्धि अब भी की जाती है। हवन से बनने वाले एनेथोल, क्रिसोल, कार्वाक्रॉल, सैफ्रोल तथा थाइमोल आदि भी फीनोल जाति के पदार्थ हैं। थाइमोल फीनोल की अपेक्षा पच्चीस गुणा शक्तिशाली अपवित्रता एवं कृमिनाशक है। इसका एल्कोहॉल में 10 प्रतिशत घोल कवकनाशी तथा पराश्रयी जीवनाशक है। क्रिसोल फीनोल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली कृमिनाशक है। यूँ भी यह कम विषैला है; यह जूँ को मार देता है। मैन्थोल भी जूँ को परे भगा देता है तथा कपूर से अच्छा अपवित्रतानाशक है। इन सभी पदार्थों में गन्दगी से उत्पन्न होने वाले कीड़े-मकोड़े, मच्छर, पिस्सू आदि को मारने या भगाने का गुण भी है।

कपूर, गूगल, चन्दन, केसर, लोबान, बालछड़, अगर, तगर, नीम के पत्ते आदि कृमिनाशक हैं। इनका धुआँ स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद है। गिलोय, नीम के पत्ते तथा घृत के जलाने से जो धूम बनता है, वह मलेरिया बुखार में बहुत लाभदायक है। गिलोय, नीम के पत्ते और शक्कर को अंगारों पर जलाकर धूनी देने से जुकाम ठीक हो जाता है। जौ का धुआँ मच्छरों को दूर भगाता है। चावल और खीलों को जलाने से छाती के रोग नष्ट करने में सहायता मिलती है।

अग्निहोत्र के द्वारा लौंग, इलायची, देवदार, चन्दन, यूकेलिप्टस आदि कई प्रकार के तेल बना देते हैं। ये तेल कई यौगिक पदार्थों का मिश्रण होते हैं। ये सभी कृमिनाशक होने के कारण स्वास्थ्य के लिए हितकर माने गए हैं, उदाहरणार्थ – यूकेलिप्टस का तेल शरीर पर लगा लेने से मच्छर नहीं काटते, परन्तु यह प्रभाव इस तेल की गन्ध उड़ जाने पर नष्ट हो जाता है। इस तेल में कोलाई बैसिलस, टेट्राजिन बैसिली, वर्गुले बैसिलस, स्ट्रेप्टोकोकस आदि रोगाणु भी मर जाते हैं। खुशबूदार तेल वायु को केवल सुगन्धित ही नहीं करते, अपितु उनमें कृमिनाशक शक्ति भी होती है। इनकी गन्ध से जूँ, पिस्सू आदि मर जाते हैं। सम्भवतः इसी कारण कई रोग उन क्षेत्रों में नहीं होते जहाँ फूल लगे हुए हों। हैम्पटन का मत है कि "इन रोग निरोधियों का वास्तविक लाभ इन कीटाणुओं को मारने में नहीं, अपितु उन्हें ले जाने वाले खटमल तथा जूँ आदि को परे रखने में है।"[12]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यज्ञ के द्वारा रोगों को क्षय सम्भव है। आज शारीरिक शक्ति का ह्रास होता जा रहा है, कद घट रहा है, नित्य नई-नई व्याधियाँ उत्पन्न हो रही हैं। यदि अग्निहोत्र की ओर ध्यान दिया जाए तो न केवल व्याधियाँ नष्ट हो जाएँ अपितु राष्ट्र में आध्यात्मिक वातावरण भी बन जाए, जिसके द्वारा चारित्रिक उत्थान का स्वप्न भी साकार हो सकेगा।

### संदर्भ एवं टिप्पणियां

1. ऋषि दयानन्द सरस्वती, यजुर्वेद भाषाभाष्य, दयानन्द संस्थान, दिल्ली
2. उपरिलिखित; तुलना: ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेदविषयविचार: पृष्ठ 41
3. ऋषि दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास
4. तुलना: गोपथब्राह्मण (2, 1, 12)

   अधो भैषज्ञयज्ञा व एते यच्चतुर्मास्यानि।

   तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते। ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते॥
5. रामनाथ वेदालंकार, आर्ष ज्योति, समर्पण शोध संस्थान, साहिबाबाद, 1991, पृष्ठ 262
6. सद्धर्मप्रचारक, 2 फाल्गुन, संवत् 1968
7. सरस्वती, अक्तूबर 1991
8. भारत सुदशा प्रवर्तक, जून 1903
9. लीडर (इलाहाबाद से प्रकाशित समाचारपत्र), 6 अप्रैल, 1955
10. डॉक्टर फुन्दनलाल अग्निहोत्री, यज्ञ-चिकित्सा (1949)
11. Akhil Ranjan Majumdar, Modern Pharmacology and Therapeutic Guide, Calcutta Scientific Publication (1957)
12. Hampton, The Scent of Flowers and Leaves

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# वृष्टि

प्राणि मात्र के लिए तीन पदार्थ अत्यावश्यक हैं– वायु, जल और भोजन (अन्न)। मनुष्य तथा पशुओं का तो कहना ही क्या, इनके बिना तो वृक्ष और पौधे भी जीवित नहीं रह सकते। यज्ञ न केवल वायु की शुद्धि करता है, अपितु वनस्पति जगत् के लिए उपयोगी वर्षा में भी सहायक है।

वेद अग्निहोत्र को वर्षा में सहायक मानता है। इसीलिए यजुर्वेद (1, 16) में यज्ञ को 'वर्षवृद्धम्'- वर्षा में बढ़ाने वाला कहा गया है। अग्निहोत्र में वर्षा के निमित्त दी गई आहुतियों से वर्षा और वर्षा से जीवों को जीवन, रक्षा, आयु और सुख मिलता है (यजुर्वेद 28, 39)।

यजुर्वेद (1, 25) के निम्नलिखित मन्त्र में भी भक्त का ऐसा ही विश्वास झलकता है,

**पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिꣳ सिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं**
**वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन**
**पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥**

अर्थात् "हे सूर्यादि जगत् के प्रकाश करने तथा राज्य और ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर! आपकी कृपा से मैं विद्वानों के यज्ञ करने की जगह यह जो भूमि है उसके और जो यवादि औषधि हैं उनके वृद्धि करने वाले मूल का नाश न करूँ और मैं अनेक प्रकार सुखदायक भूमि में जिस यज्ञ का अनुष्ठान करता हूँ, वह जल वृष्टिकारक मेघ को प्राप्त हो, वहाँ जाकर सूर्य की किरणों के गुणों से वर्षाता है...।"[1] यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के तेरहवें मन्त्र में भी ऐसा ही संकेत है।

अथर्ववेद (4, 15, 16) में कहा है-

**तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टा।**

अर्थात् 'जब वर्षा करवाने की आवश्यकता हो, तब बहुत-से यज्ञ विविध प्रकार से करने चाहिएँ।'

मनु महाराज कहते हैं –

**अग्नौ प्रस्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।**
**आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजा॥**

मनु. 3, 48

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



अर्थात् 'अग्नि में दी गई आहुति सूर्यमण्डल में पहुँचती है, उससे बादल बनते हैं, वर्षा होती है, उससे अन्न की उत्पत्ति होती है, जिससे प्रजाओं की उत्पत्ति और जीवन चलता है।'

योगेश्वर श्रीकृष्ण का सन्देश है—

**अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।**
**यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः॥**

गीता. 3, 14

अर्थात् 'यज्ञ से मेघ, मेघ से वर्षा, वर्षा से अन्न की उत्पत्ति होती है।'

ऋषि दयानन्द द्वारा रचित ग्रन्थों – विशेषतया वेदभाष्य में ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे लगता है कि ऋषिवर यज्ञ द्वारा वृष्टि सम्भव मानते हैं। इस प्रसंग में ऋग्वेद भाष्य (5, 53, 5 व 5, 58, 2), यजुर्वेद भाष्य (1, 13–14 व 1, 19) तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदविषयविचार-प्रकरण में शतपथ ब्राह्मण (5, 3) के कोष्ठक में अंकित मन्त्रों अथवा वचनों के भावार्थ एवं सरलार्थ मननीय हैं।

अग्निहोत्र द्वारा होने वाली वर्षा अधिक लाभप्रद है क्योंकि यज्ञ द्वारा जो मेघ बनते हैं, वे दोषरहित होते हैं, अतः वृष्टि जल भी शुद्ध होता है। इस कारण सभी पदार्थों में पवित्रता आ जाती है। महर्षि दयानन्द[2] ने इस प्रसंग में लिखा है – ''यज्ञ से जो भाप उठता है, वह भी वायु और वृष्टि के जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जग को सुख करता है। ... शुद्ध जल और वायु के द्वारा अन्नादि औषधि भी अत्यन्त शुद्ध होती हैं। ऐसे प्रतिदिन सुगन्ध के अधिक होने से जगत् में नित्य प्रति अधिक अधिक सुख बढ़ता है। यह फल अग्नि में होम करने के विना दूसरे प्रकार से होना असम्भव है।''

आज विश्व में अणुविस्फोट किए जा रहे हैं, इनसे वायुमण्डल दूषित और दुर्गन्धयुक्त हो रहा है। फिर इस प्रकार होने वाली वृष्टि से उत्पन्न वनस्पति भी इन दोषों से पूर्ण होती है। यदि प्रयोगों की यह श्रृंखला इसी प्रकार चलती रही तो भावी सन्तानों के स्वास्थ्य पर इसका दुष्प्रभाव पड़ेगा। इसके विपरीत यज्ञ की सुगन्धि वृष्टिजल को शुद्ध करके मनुष्य के कद, भार एवं रूप-लावण्य पर सुखद प्रभाव डालती है।

यज्ञ से वृष्टि किस प्रकार होती है— इस समस्या का समाधान वैदिक-वृष्टि विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त अनुसन्धान की मांग करता है, तो भी शास्त्रकारों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह प्रश्न सम्भवतः किसी भी समय अछूता नहीं रहा। शतपथब्राह्मण (5, 3, 5, 17) ने तो स्पष्ट कहा है-

**अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद् वृष्टिः।**

अर्थात् 'अग्नि से धूम, धूम से बादल और मेघ से वृष्टि होती है।'

इस विचार से पाश्चात्य विद्वान् भी सहमत दीख पड़ते हैं। डॉक्टर हार्टनिंग ने लिखा था, "अफ्रीका के जंगल में घास-फूस के बड़े भारी ढ़ेर के जलाने से वहाँ भी जहाँ वर्षा की आशा न थी, मेंह आ गया, अतः मेंह बरसाने के लिए आग का जलाना गुणकारी है।"[3] अमरीकी विद्वान् एण्ड्रोजेक्शन डेविस ने 'मेंह बरसाने का विज्ञान' शीर्षक लेख में वर्षा के लिए जो सिद्धान्त दिया था, वह यज्ञ के सिद्धान्त से मिलता-जुलता है।[4] यज्ञ-धूम में धूलिकणों की बहुलता होती है। लकड़ी के जलने से भी कुछ कार्बन धूल बन जाती है। कई अन्य पदार्थ भी अच्छी प्रकार जले बिना वायु में मिल जाते हैं। इन कणों के चारों ओर पानी जमकर आकाश को मेघाच्छादित कर देता है।

वैज्ञानिक धूल को वर्षा में सहायक मानते हैं। एटकन ने सिद्ध किया है कि वायु में घूमने वाले सभी प्रकार के धूलकण जलयुक्त पवनों के ठण्डा होकर जमने के लिए "जामन" का कार्य करते हैं। यदि वायु में ये धूलकण न हों, तो पवन को ठण्डा करने के लिए तापांश का अधिक कम होना अनिवार्य है। यदि धूलरहित नमीयुक्त वायु में से पराबैंगनी किरणें या सूर्य की साधारण किरणें भी गुज़रने दी जाएँ तो इस न्यूनता की कुछ अंश तक पूर्ति हो सकती है। धनात्मक विद्युत् की अपेक्षा ऋणात्मक विद्युत् से युक्त धूलिकण पानी के जमाव में अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

वर्षा में विद्युत् का भी कुछ लाभ है। इस प्रकार का भाव निम्नलिखित मन्त्र से प्रकट होता है-

**अपामग्निस्तनूभिः संविदानो य ओषधीनामधिपा बभूव।**
**स नो वर्षं वनुतां जातवेदाः प्राणं प्रजाभ्यो अमृतं दिवस्परि॥**

अथर्व. 4, 15, 10

अर्थात् "मेघ में स्थित जलों की विद्युत् जलों के शरीरभूत मेघों से मिलकर रहती है, जो कि वनस्पतियों का स्वामी, पालक है। वह समस्त पदार्थों में व्यापक अग्नि हमारे लिए वृष्टि को और आकाश से बरसते अमृतरूपी जल को और पशुओं के लिए प्राण देवें। वायु के संघर्ष से मेघों में बिजली उत्पन्न होती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



है। वह ऋण और धनरूप में पैदा होकर पुन: परस्पर मिलती है और कड़कती है। उनसे जलों में विशेष प्रकार की प्राणशक्ति और मेघों के जलों की वृद्धि भी होती है। औषधियाँ अधिक जल पातीं और प्रजाएँ सुखी होती हैं।''[5]

वर्षा में बिजली के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। सम्भवत: यज्ञ भी सर्वप्रथम आकाश में बिजली भरता है, फिर मेघ बनते हैं और वर्षा होती है। अग्निहोत्र के द्वारा धूम पैदा होता है, जिसमें पर्याप्त मात्रा में वाष्प, धूलिकण आदि रहते हैं। वैज्ञानिकों ने धूम को वायु में बहुत सूक्ष्म कणों का कोलॉइडी विलयन (घोल) माना है। वायु में तैरने वाले इन सभी कोलॉइडी कणों में ऋणात्मक विद्युत् होती है तथा एटकन के मतानुसार ऋणात्मक विद्युत् से युक्त कण ही वर्षा में सर्वाधिक सहयोगी हैं। हवन करते समय कुछ घृत बिना जले ही अति सूक्ष्म कणों के रूप में उड़ जाता है। यह घी बहुत से धूलिकणों पर अपनी परत जमा देता है। इस प्रकार के सभी कण प्राय: बिजली से युक्त होते हैं। इनमें नमी चूसने की विशेष शक्ति होती है। इन पर जब नमी की एक परत जम जाती है, तो और नमी खिंचती चली जाती है। इस प्रकार मेघ बनाने में इन कणों का महत्त्वपूर्ण योग है।

अग्निहोत्र केवल मेघ बनाता ही नहीं, अपितु उन्हें बरसने में भी सहायता करता है। मेघों के बरसने के लिए वायु में नमी की बहुलता का होना अनिवार्य है। प्रत्येक तापांश पर वायु में एक विशेष सीमा तक ही नमी रह सकती है। हवा जितनी अधिक गर्म होगी, उतना ही अधिक जल धारण कर सकेगी। हवन के कारण तापमान कुछ बढ़ जाता है, अत: वायु पर्याप्त नमी खींच लेती है, फिर हवन के द्वारा नीचे की वायु गर्म होकर हलकी हो जाती है, अत: यह वायु ऊपर चढ़ते समय मेघ को भी अपने साथ ले जाती है (द्रष्टव्य: यजु. 6, 16)। यहाँ तापांश की न्यूनता के कारण वायु समस्त नमी को धारण करने में असमर्थ हो जाती है। तब मेघ बरसने लगते हैं।

यज्ञ द्वारा वर्षा केवल दिमागी दौड़ नहीं है अपितु वास्तविकता है। प्राचीन भारत में हवन के द्वारा वर्षा करवाई जाती थी। इस हेतु प्रत्येक नगर और ग्राम में बड़े-बड़े यज्ञों का आयोजन किया जाता था। ग्रामों में आज भी यह प्रथा प्रचलित है, किन्तु इसका स्वरूप विकृत हो चुका है। अनावृष्टि के समय गाँव के सभी लोग मिलकर यज्ञ करते हैं, फिर भारी संख्या में उपस्थित लोगों को भोजन करवाया जाता है। उनका विश्वास है कि इस प्रकार इन्द्र देवता प्रसन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



हो जाएँगे तथा वर्षा अवश्य होगी। इस सारे कार्य को ये लोग 'जग' कहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यज्ञ का नाम बिगड़कर 'जग' बन गया है। (जैसे यजमान का जजमान, यमुना का जमना हो गया है।) इस अवसर पर किया जाने वाला हवन इस बात किा द्योतक है कि अग्निहोत्र वर्षा में सहायक माना जाता रहा है।

शास्त्रीय विधि के अनुसार यज्ञ करने से वर्षा करवाई जा सकती है। इस प्रसंग में छोटे-छोटे प्रयोग कई बार किए जा चुके हैं, जो प्रायः सफल रहे हैं।[6,7] प्रायः विद्वानों ने वृष्टियज्ञ हेतु प्रयोग की जाने वाली सामग्री की जानकारी अपने लेखों में नहीं दी है। केवल कुछ संकेत ही यत्र-तत्र मिलते हैं, यथा -

**घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः।**
**अस्मभ्यं वृष्टिमा पव॥** ऋ., 9, 49, 3

**घृत वद्भिश्च हव्यैः॥** ऋ., 7, 3, 7

**सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन॥** अथर्व., 7, 98, 1

इन मन्त्रों में वृष्टि-यज्ञ के लिए घृत को हव्य-द्रव्य माना है।

**पयः सोमो दधातु मे। सोमाय स्वाहा॥**
अथर्व., 19, 43, 5

अर्थात् 'सोम के निर्माण-हेतु पय (पेय्-जल, अन्न, औषधि, वनस्पति, दूध, घी आदि) की आहुति देनी चाहिए।'

आजमायश के लिए वृष्टि हेतु एक सप्ताह प्रातः व सायं दो-दो घण्टे यज्ञ किया जाए जिसमें जल में पैदा होने वाले पदार्थों जैसे सिंघाड़ा, समूचा कमल गट्टा, नागरमोथा, सिरवाल आदि (प्रत्येक एक-एक किलोग्राम), सामान्य हवन सामग्री (7 किलोग्राम) और देशी शक्कर को गोघृत (1 किलोग्राम) में मिलाकर आहुतियाँ दी जाएँ। यज्ञ में जितनी सामग्री हो, उसका लगभग एक-तिहाई घृत होवे। बिनौले उबालकर सुखाकर कूट लेवें। इसकी तथा खल की आहुतियाँ दी जाएँ।[8] अन्य मन्त्रों के अतिरिक्त अथर्ववेद (4.15.1-9) के मन्त्रों से आहुतियाँ दी जाएँ।

कृत्रिम वर्षा के क्षेत्र में वैज्ञानिक अनुसन्धान करते रहे हैं। कुछ सफलता भी मिली है। जब आकाश में मेघ छाए हुए होते हैं तो उनके ऊपर खुश्क बर्फ छिड़क दी जाती है। इससे बादलों का तापांश कम हो जाता है तथा 15-20 मिनट के बाद वर्षा होनी प्रारम्भ हो जाती है। इस प्रकार न बरसने वाले मेघों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



भी बरसाया जा सकता है। आस्ट्रेलिया तथा अमरीका में इस विधि का लाभ उठाया गया है। ऋग्वेद(8, 32, 26) ने भी इस विधि की ओर संकेत किया है-

**अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम्। हिमेनाविध्यदर्बुदम्॥**

अर्थात् 'चमक-दमक वाले तथा सूर्य की भाँति गति करने वाले मेघों को विद्युत् फाड़ता है तथा मेघों को बर्फ द्वारा बींधता है।'

हवन द्वारा बादलों को केवल बरसाया ही नहीं जा सकता, अपितु बादलों का निर्माण भी किया जा सकता है; अतः यदि आकाश मेघाच्छादित न हो, तो भी वर्षा की जा सकती है।

अनावृष्टि की भाँति अतिवृष्टि भी भयंकर समस्या खड़ी कर देती है। इसके कारण दैनिक कार्य करने भी कठिन हो जाते हैं। नदियों में बाढ़ आ जाती है। इस प्रकार जन, धन एवं समय की अपार हानि होती है। अतः अतिवृष्टि पर नियन्त्रण करना आवश्यक है। वेद ने इस कार्य को सम्भव माना है। यजुर्वेद (15, 6) में स्पष्ट शब्दों में आदेश है-

**विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व।**

अर्थात् 'वर्षा के रोकने के द्वारा वृष्टि को जीतो।'

परन्तु यह कार्य हो किस प्रकार? आधुनिक विज्ञान इस क्षेत्र में अभी कोई सफलता प्राप्त नहीं कर पाया है। वैसे इसके लिए दो विधियाँ दिखाई पड़ती हैं-

प्रथम - हवन के द्वारा आकाश में ऐस द्रव्य भर दिए जाएँ कि आकाश में छाये हुए बादल बरसने में समर्थ न हो सकें। इस हेतु पूर्ण विधि का निर्माण तथा यथेष्ट पदार्थों का चयन करने के लिए अनुसन्धान की आवश्यकता है।

द्वितीय - बादलों को ऐसे स्थानों पर भेज दिया जाए जहाँ वर्षा न होती हो। फिर उस स्थान पर उन्हें ठण्डा करके बरसा दिया जाए।

वायु की दिश बदलकर इस कार्य में सफलता प्राप्त की जा सकती है। जिस ओर हवाएं जाती हैं, मेघ भी उसी ओर चल पड़ते हैं। इसका संकेत अथर्ववेद (4, 15, 9) में किया है-

**मरुद्भिः प्रच्युता मेघाः प्रावन्तु पृथिवीमनु॥**

अर्थात् 'वायुओं से प्रेरित मेघ पृथिवी की ओर खूब जोर से उमड़कर आवें।' इसी प्रकार एक और मन्त्र में कहा है-

**उदीरयता मरुतः समुद्रतस्त्वेषो अर्को नभ उत्पातयाथ।**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



**महत्रृषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपः पृथिवीं तर्पयन्तु॥**

अथर्व. 4, 15, 5

अर्थात् 'हे जलयुक्त पवनो! समुद्र के मध्य से ऊपर उठकर आओ और मेघों को उड़ा लाओ। तेज चमकता हुआ सूर्य मेघ को ऊपर उड़ाए। गरजते हुए वायु से प्रेरित वर्षा के बड़े मेघ की छमछम करती जल-धाराएँ बरसकर पृथिवी को तृप्त कर दें।'[5]

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ऋग्वेद (1, 85, 3) में भी किया है-

**गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः।**
**बाधन्ते विश्ववभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम्॥**

अर्थात् 'सूर्य, पृथिवी एवं वायु बिजलियों से शोभा पाते हैं तथा अपने शरीरों में भिन्न-भिन्न कान्ति से युक्त बादलों को धारण करते हैं, अलग-अलग दिशाओं में फैलने वाले मेघों को पीड़ित करते हैं, इस कारण जिस ओर वायु आदि जाती हैं, उस मार्ग पर ही मेघ का जल भी जाता है।'

पवनों की दिशा बदलने से मेघों का मार्ग परिवर्तित किया जा सकता है। इसके लिए यज्ञ द्वारा अल्प-वृष्टि के क्षेत्रों में वायु का दवाब कम कर दिया जाए और फिर अधिक वर्षा के क्षेत्रों से इन मरुभूमियों की ओर संवहनी पवनें चलाई जाएँ तो मेघ भी उनके साथ उधर आ जाएँगे। इस सारी प्रक्रिया को पूर्ण करने के लिए हवन-यज्ञ की विशेष उपयोगिता अनुभव होती है, क्योंकि तापांश एवं वायु के दबाव की यह भिन्नता अग्नि के बिना सम्भव नहीं। इसीलिए ऋग्वेद (1, 79, 2) में कहा है-

**आ ते सुपर्णा अभिनन्तँ एवैः कृष्णो नोनाव वृषभो यदीदम्।**
**शिवाभिर्न स्मयमानाभिरागात् पतन्ति मिहः स्तनयन्त्यभ्रा॥**

अर्थात् "हे अग्ने! जब तेरी उत्तम शक्तियाँ सब ओर से मेघ पर आघात करती हैं, तब काले रंग का बरसने वाला बादल इधर की ओर झुकता है। वह शान्तिदायक मुस्कराती हुई बिजलियों से युक्त हो जाता है, फिर मेंह गिरता है और मेघ गरजते हैं।"

यदि इन वेद-मन्त्रों के आधार पर खोज की जाए तो सम्भवतः अतिवृष्टि से भी बचा जा सकता है। जहाँ अग्निहोत्र वर्षा में सहायक है, वहाँ इसके द्वारा भूमि की उर्वरता भी बढ़ाई जा सकती है। वस्तुतः पौधों के लिए नाइट्रोजन का केवल नाइट्रेट के रूप में ही लाभ उठाया जा सकता है। वनस्पतियों को कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



नाइट्रेट तो खाद द्वारा प्राप्त हो जाते हैं। शेष कमी को नाइट्रोफाईंग बैक्टीरिया या चना, मटर आदि पौधों की जड़ों में रहने वाले सहजीवी बैक्टीरिया पूरी कर देते हैं, परन्तु यदि हवन की गैसों को कुछ दिन खेत की मिट्टी के ऊपर से गुजारा जाए तो भूमि की नाइट्रीकारी शक्ति बढ़ जाती है। इस प्रकार हवन वनस्पति-जगत् के लिए भी लाभदायक है।

यदि इस क्षेत्र में गम्भीर अन्वेषण किया जाए तो यजुर्वेद (22, 22) में की गई भक्त की प्रार्थना- **निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु** जब-जब हम इच्छा करें तब-तब मेघ बरसें – प्रभु स्वीकार करेंगे।

### संदर्भ एवं टिप्पणियाँ

1. ऋषि दयानन्द सरस्वती, यजुर्वेदभाष्य, दयानन्द संस्थान, दिल्ली
2. ऋषि दयानन्द सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, वेद विषयविचारः
3. मास्टर आत्माराम, वैदिक विवाह-आदर्श, पृष्ठ 268
4. A.J. Davis, Harmonical Man, A.J. Devis & Co. Publisher, 274 Canal Str., New York, pp. 31-131.
5. पण्डित जयदेव कृत अथर्ववेदभाष्य
6. पण्डित वीरसेन वेदश्रमी ने इस क्षेत्र में कुछ कार्य किया है। उनकी "वैदिक वृष्टि विज्ञान" नामक लघु पुस्तकें वेद सदन, 72 महारानी पथ, इन्दौर (मध्य प्रदेश) से प्रकाशित हुई थीं।
7. परोपकारी, जुलाई 1992
8. वयोवृद्ध पण्डित भूदेव शास्त्री (देहरादून) के अनुसार वर्षा के लिए आर्द्रा नक्षत्र और सर्व सिद्ध योग अथवा अग्निवास की तिथि और बार में यज्ञ किया जाना चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परिशिष्ट 1

ऋत्वनुकूल यज्ञ सामग्री का एक योग नीचे दिया जाता है। इस आध किलोग्राम सामग्री में 120 ग्राम खाण्ड या बूरा तथा 75 ग्राम गोघृत मिला लेना चाहिए।

**बसन्त ऋतु ( चैत्र, वैशाख )**

केसर (1 ग्राम), जावित्री (3 ग्राम), लज्जावती (6 ग्राम), अगर, दालचीनी, तेजबल, चिरायता, खस, तगर, तालीसपत्र, छरीला, पत्रज, इन्द्रजौ, जायफल, कमलगट्टा, मजीठ, कपूरकचरी, गोखरू (प्रत्येक 15 ग्राम), कपूर (20 ग्राम), दाख, देवदार, गिलोय, गुग्गुल, गूलर की छाल (प्रत्येक 40 ग्राम), चन्दन लाल, पीला, श्वेत (45 ग्राम)

**ग्रीष्म ऋतु ( ज्येष्ठ, आषाढ़ )**

केसर (1 ग्राम), नागरमोथा, पीला चन्दन, लाल चन्दन, बायबिडंग, छरीला, शतावरी, गिलोय, लौंग, दालचीनी, निर्मली, तगर, तालीपत्र, मजीठ, शिलारस, आँवला, बड़ी इलायची, बालछड़, अन्नाव, दारुहल्दी, पद्माख (प्रत्येक 15 ग्राम), कपूर (20 ग्राम), चिरौंजी, गुलसुर्ख, सुपारी (प्रत्येक 35 ग्राम), मूँग, चावल (प्रत्येक 37 ग्राम)

**वर्षा ऋतु ( श्रावण, भाद्रपद )**

बेल (2 ग्राम), संखाहुली, छोटी इलायची (प्रत्येक 6 ग्राम), काला अगर, तगर, इन्द्रजौ, जायफल, तेजपत्र, कपूर, गिलोय, तुलसी के पत्ते व बीज, नागकेसर, बायबिडंग, चिरायता, मोचरस, कपूरकचरी, ब्राह्मी (प्रत्येक 12 ग्राम), उड़द, जौ (प्रत्येक 24 ग्राम), गुग्गुल, देवदार, राल, गोला, बालछड़, बच, श्वेत चन्दन का चूरा, छुहारे, नीम के पत्ते (प्रत्येक 30 ग्राम)

**शरद ऋतु ( आश्विन, कार्तिक )**

केसर (1 ग्राम), जायफल (11 ग्राम), ब्राह्मी, पीला चन्दन, लाल चन्दन, गिलोय, बड़ी इलायची, नागकेसर, पित्तपापड़ा, मोचरस, दालचीनी, अगर, इन्द्रजौ, भारंगी, असगन्ध, शीतल चीनी, पत्रज, चिरायता, सहदेहई, धान की खील, तालमखाना (प्रत्येक 12 ग्राम), कपूर (20 ग्राम), बालछड़, गूलर की छाल, कपूरकचरी, गुग्गुल, श्वेत चन्दन, किशमिश (प्रत्येक 20 ग्राम),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



चिरौंजी (60 ग्राम)

**हेमन्त ऋतु ( मार्गशीर्ष, पौष )**

केसर (2 ग्राम), रासना, मुश्कबाला, कौंच के बीज (प्रत्येक 6 ग्राम), काली मूसली, मुलहठी, जावित्री, तालीसपत्र, लाल चन्दन, पटोलपत्र, पित्तपापड़ा, कूट, कपूर, सौंफ, भारंगी, गिलोय, दालचीनी, पुष्करमूल, गोखरू, बादाम (प्रत्येक 15 ग्राम), देवदार, मुनक्का (प्रत्येक 20 ग्राम), अखरोट की गिरी, कपूरकचरी (प्रत्येक 25 ग्राम), गुग्गुल, छुहारे, काले तिल, गोला, तुम्बर (प्रत्येक 30 ग्राम)

**शिशिर ऋतु ( माघ, फाल्गुन )**

केसर (1 ग्राम), शंखपुष्पी, कौच के बीज, भोजपत्र, रेणुका (प्रत्येक 6 ग्राम), कपूर, बायबिड़ंग, बड़ी इलायची, मोचरस, मुलहठी, गिलोय, तज, चिरायता, तुलसी के बीज व पत्ते, चिरौंजी, काकड़ासिंगी, दारुहल्दी, शतावरी, पद्माख, सुपारी (प्रत्येक 15 ग्राम), छुहारे, अखरोट, चन्दन (प्रत्येक 25 ग्राम), राल, तूम्बर, बालछड़, गुग्गुल, मुनक्का (प्रत्येक 35 ग्राम)

**द्रष्टव्यः**

तुलनाः भवानीप्रसाद, आर्य पर्व-पद्धति, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली, सन् 1984, पृष्ठ 43–56; भीमसेन शर्मा तथा हरिदत्त शास्त्री, अभिनव संस्कार चन्द्रिका, भाग 1, सत्य प्रकाशन, मथुरा, दयानन्दाब्द 141, पृष्ठ 101–3

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परिशिष्ट 2

पुस्तक में प्रयुक्त कुछ शब्दों का अंग्रेजी में पारिभाषिक रूपान्तर

| | |
|---|---|
| अम्ल | Acid |
| असन्तृप्त | Unsaturated |
| ऑक्सीकरण | Oxidation |
| आसवन-क्रिया | Distillation |
| कृमिनाशक | Disinfectant |
| कवकनाशी | Fungicide |
| खनिज | Mineral |
| गोंद | Mucilage |
| दहन-क्रिया | Combustion |
| जल-विच्छेदन | Hydrolysis |
| तन्तु | Fibre |
| तापांश | Temperature |
| प्रकाश-संश्लेषण | Photosynthesis |
| पराश्रयी जीवनाशक | Parasiticide |
| राल | Resin |
| रासायनिक | Chemical |
| रोगाणु, रोगकीट | Germ |
| वसा | Fat |
| वसीय अम्ल | Fatty acid |
| वाष्पशील | Volatile |
| संगत | Corresponding |
| सगन्ध | Essential oil |
| सन्तृप्त | Saturated |
| सौरभिक पदार्थ | Aromatic compound |
| शर्करा | Sugar |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परिशिष्ट 3

अध्याय 6 तथा 7 में वर्णित कुछ वाष्पशील सौरभिक पदार्थ-

Anethol (p-propenyl anisol), $C_6 H_4(OCH_3)$ (CH: $CH.CH_3$), b.p.$233\text{-}34^0$

Borneol, $C_{10}H_{18}O$, from Jatamansi, b.p.$212^0$

Carvacrol (isopropyl-o-cresol i.e. ortho-isomer of thymol), b.p.$236^0$

Cineol, $C_{10}H_{18}O$, in Kulanjan and certain cardamom oils, b.p.$176^0$

Eugenol, $C_6H_3$ (OH). ($OCH_3$) ($CH_2$ . $CH:CH_2$), b.p.$252^0$

Furfurol, $C_4H_3$.O.CHO, in clove oil, cinnamom oil, sandal wood oil, b.p.$161^0$

Myristicin (4-ally1-6-methoxy-1, 2-methylene dihydroxy-benzene), $C_{11} H_{12} O_3$, b.p.$172^0$

d-Pinene, $C_{10} H_6$, in Kulanjan etc., b.p. $155^0$

Safrol, $C_6 H_3$ (<0.$CH_2$ O>). ($CH_2$. $CH:CH_2$), b.p.$485^0$

Santalols, $C_{15}H_{24}O$, in sandal wood, b.p.$301^0$

d-Terpineol, $C_{10}H_{18}O$, in cardamom etc. b.p.$217^0$

1-$\alpha$-Terpineol, in wood turpentine and camphor oils

Thymol (isopropyl-m-cresol), $CH_3$. $C_6H_3$. (OH). $C_3H_7$, b.p. $232^0$

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

# परिशिष्ट 4

अध्याय 6 तथा 7 में सांकेतिक रासायनिक परिवर्तन नीचे दिए जाते हैं-

$(C_6H_{10}O_5)_n$ + $6n\,O_2$ ------> $6n\,CO_2 + 5n\,H_2O$ (1)
cellulose oxygen → carbon dioxide, water

$(C_6H_{10}O_5)_n + 3n\,O_2$ ------> $6n\,CO + 5n\,H_2O$ (2)

$(C_6H_{10}O_5)_n$ ------> $6n\,C + 5n\,H_2O$ (3)

$2\,CH_3COOH$ (acetic acid) ------> $CH_3\,COCH_3 + CO_2 + H_2O$ (acetone) (4)

$2\,CH_4$ (methane) ------> $C_2H_2 + 3\,H_2$ (acetylene) (5)

$HOCH_2CH(OH)CH_2OH$ (glycerol) $\xrightarrow{-2H_2O}$ $H_2C{=}CHCHO$ (acrolein) (6)

$\xrightarrow{O_2}$ $2\,CO_2 + HCHO + H_2O$ (formaldehyde) (7)

$HOCH_2CH(OH)CH_2OH$ (glycerol) $\xrightarrow{O_2}$ $HOCH_2CH(OH)CHO$ (glyceraldehyde)

$\xrightarrow{O_2}$ $HOCH_2CH(OH)COOH$ (glyceric acid)

------> $HOCH(COOH)_2$ (tartronic acid)

------> $O{=}C(COOH)_2$ (mesoxalic acid) (8)

$HOCH_2CH(OH)CHO$ (glyceraldehyde) $\xrightarrow{O_2}$ $HOCH_2COCHO$ (hydroxypyruvic aldehyde)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



$\xrightarrow{O_2}$ $HOCH_2COCOOH$
hydroxypyruvic acid

$\xrightarrow{-CO_2}$ $HOCH_2CHO$
glycol aldehyde

$\xrightarrow{O_2}$ $OHCCHO$
glyoxal

$\xrightarrow{O_2}$ $HOOCCOOH$
oxalic acid

$\xrightarrow{O_2}$ $2CO_2 + H_2O$ (9)

$CH_3(CH_2)_7CH{=}CH(CH_2)_7COOH \xrightarrow{O_2} CH_3(CH_2)_7CHO +$
oleic acid
$OHC(CH_2)_7COOH$ (10)

$CH_3(CH_2)_7CHO+O_2 \longrightarrow CH_3(CH_2)_7COOH$
n-nonylic aldehyde — nonanoic acid

$\xrightarrow{-CO_2}$ $CH_3(CH_2)_6CH_3$ (11)
octane

$OHC(CH_2)_7COOH \xrightarrow{-CO_2} OHC(CH_2)_6CH_3$
n-octylic aldehyde

$\xrightarrow{+O_2}$ $HOOC(CH_2)_6CH_3$
octanoic acid

$\xrightarrow{-CO_2}$ $CH_3(CH_2)_5CH_3$ (12)
heptane

$CH_3(CH_2)_2COOH + H_2O \longrightarrow CH_4 + HOCH_2CH_2COOH$ (13)
butyric acid — steam — β-hydroxypropionic acid

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



$$HOCH_2CH_2COOH \xrightarrow{-H_2O} CH_2{=}CHCOOH$$ acrylic acid

$$\longrightarrow CH_2{=}CH_2 + CO_2 \quad (14)$$ ethylene

$$CH_3(CH_2)_{14}COOH + 4H_2O \longrightarrow C_2H_6 + 2HO(CH_2)_4OH +$$

palmitic acid, steam; ethane

$$C_4H_{10} + CH_3COOH$$ butane, acetic acid

$$\longrightarrow 2\,CH_2{=}CHCH{=}CH_2 \quad (15)$$ 1, 3-butadiene

$$CH_4 + O_2 \xrightarrow{450\text{-}550^0} CH_3OH \xrightarrow{+O_2} HCHO \quad (16)$$

methane, methyl alcohol, formaldehyde

$$OHC(CHOH)_4CH_2OH \xrightarrow{O_2} COOH(CHOH)_4CH_2OH$$ gluconic acid

$$\longrightarrow COOH(CHOH)_4COOH$$ glucosaccharic acid

$$\longrightarrow HOCH(COOH)_2 \quad (17)$$ tartronic acid

$$CO_2 + H_2O \xrightarrow{uv} HCHO + O_2 \quad (18)$$

$$CH_3COOH + HOH \longrightarrow CH_3OH + HCOOH \quad (19)$$ methyl alcohol

$$CH_3OH + O \xrightarrow[heat]{Pt} HCHO + H_2O \quad (20)$$

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
129451
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

# लेखक-परिचय

## डॉ. रामप्रकाश

• अक्तूबर 1939 में तंगौर ग्राम (कुरुक्षेत्र) में श्री प्रभुदयाल जी के घर जन्म; पिता जी अपने क्षेत्र के प्रसिद्ध आर्यसमाजी थे। माता जी (शान्ति देवी) गोरक्षा आन्दोलन में तिहाड़ जेल में रहीं। अग्रज श्री बीरुराम आर्य, धर्मपत्नी श्रीमती विजय, सुपुत्र जितेन्द्र रामप्रकाश व शैलेन्द्र

• डी.ए.वी. कॉलेज अम्बाला नगर से बी.एस-सी., पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ से रसायन विज्ञान में एम.एस-सी. (ऑनर्ज़), पी-एच.डी., चार्ल्स विश्वविद्यालय एवं हैरोवस्की (नोबल पुरस्कार विजेता) इंस्टीच्यूट ऑफ पोलेरोग्रॉफी, प्राग, चैकोस्लोवाकिया तथा यू.एस.ए. में विशेष अध्ययन/अनुसंधान

• पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में अक्तूबर 2002 तक रसायन विज्ञान के प्रोफेसर, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र में प्रो-वाइसचांसलर, (1981-84), चैकोस्लोवाकिया में यूनेस्को फैलो (1971-72), अमरीका में फुलब्राइट स्कॉलर (1989)

• राज्यमंत्री, हरियाणा सरकार (1991-93); सदस्य : हरियाणा विधान सभा (1991-96), पंजाब विश्वविद्यालय सीनेट (1972-2000), सिण्डीकेट (1977-80, 85-92, 2000); अध्यक्ष: पंजाब विश्वविद्यालय अध्यापक संघ (1974-76)

• वेद विमर्श, यज्ञ विमर्श, सत्यार्थप्रकाश-विमर्श, पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी (जीवन एवं कार्य), गुरु विरजानन्द दण्डी (जीवन एवं दर्शन), तथा The Vedas (वेद-विमर्श का अंग्रेज़ी अनुवाद) का लेखन, दण्डी जी की जीवनी, Works of Pandit Gurudatta Vidyarthi तथा Pandit Gurudatta Vidyarthi (Life and Work) का सम्पादन; लगभग 85 मौलिक वैज्ञानिक शोध-पत्र प्रकाशित

• पंजाब विश्वविद्यालय में दयानन्द चेयर की स्थापना, उसी विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के भवन का नाम पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी भवन रखवाना तथा मॉरिशस में दयानन्द शोध पीठ की स्थापना आदि विशेष उपलब्धियाँ

• चैकोस्लोवाकिया (1971-72,90), आस्ट्रिया (1971), हंगरी (1971), इंग्लैण्ड (1972, 89), जर्मनी (1972, 90), स्विट्जरलैण्ड (1972, 99), फ्रांस, बैल्जियम, नीदरलैण्ड, रोमानिया तथा यूगोस्लाविया (1972), कनाडा (1989), अमरीका (1989), मॉरिशस (1998, 2003), नैरोबी (2004) आदि में अध्ययनार्थ/अनुसंधानार्थ/प्रचारार्थ प्रवास/भ्रमण

• विद्यामार्तण्ड स्वामी धर्मानन्द सरस्वती आर्यभिक्षु पुरस्कार (1999-2000) तथा घूड़मल प्रहलादकुमार आर्य पुरस्कार (2003) से सम्मानित; मॉरिशस में आर्यसमाज स्थापना शताब्दी पर दिसम्बर 2003 में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महा सम्मलेन के अध्यक्ष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R15.3,RAM-Y

129451

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
15.3
वर्ग संख्या..राज्य.. आगत संख्या.129451

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा ५० पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा ।

129451

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

| | Signature | Date |
|---|---|---|
| Access No. | 82 | 20/6/13 |
| Class No. | Kuldeep | 22/6/13 |
| Cat No. | Kuldeep | 22/6/13 |
| Tag etc. | Kuldeep | 22/6/13 |
| E.A.R. | | |
| Recomm. by. | DONATION | |
| Data Ent. by | 82 | 20/6/13 |
| Checked | | |

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Haridwar